वितस्ता

सम्पादिका

डॉ० ज़ौहरा अफ़ज़ल

हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्व विद्यालय

श्रीनगर-१९०००६

वितस्ता
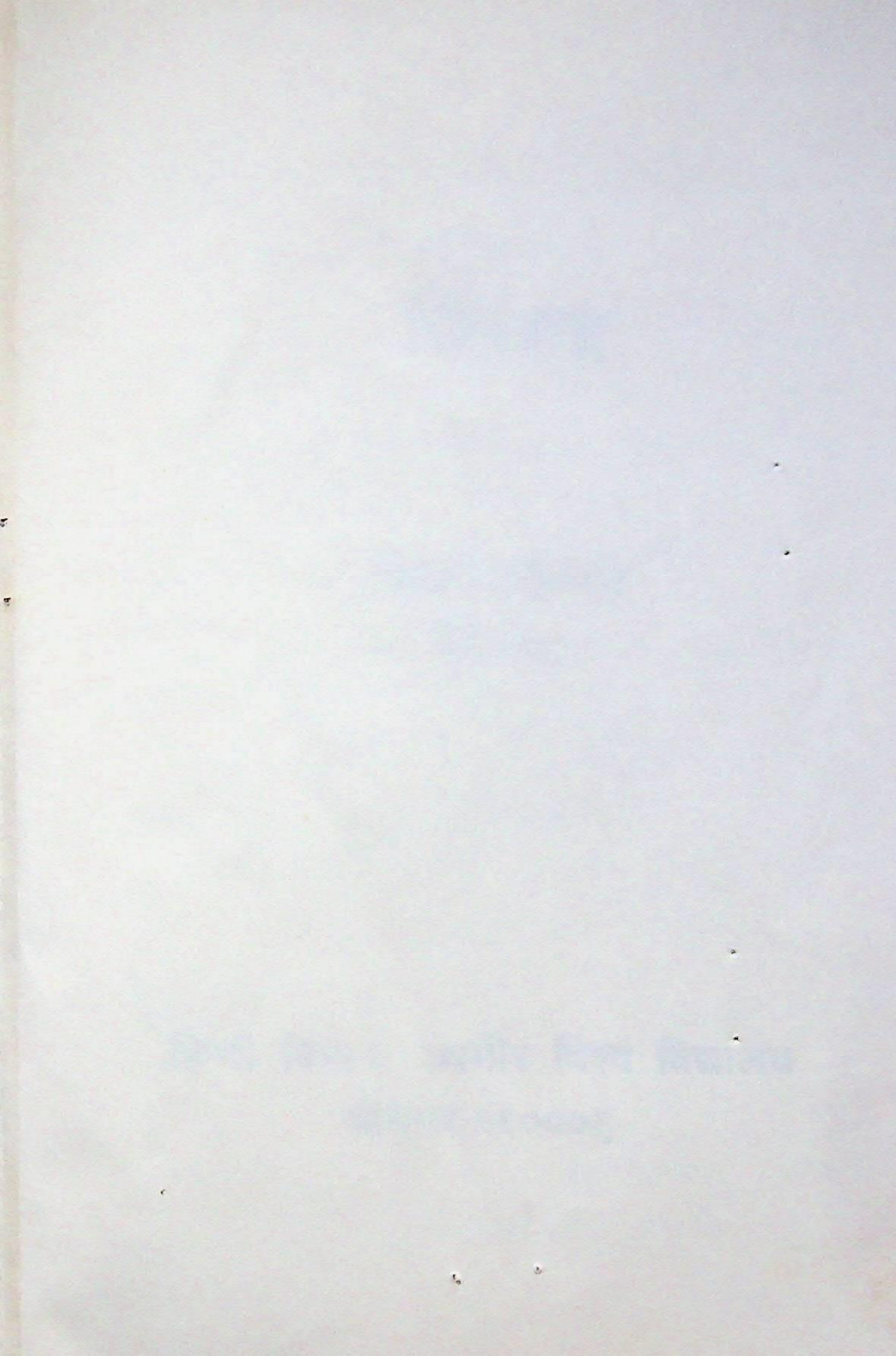
शोध-संचयिका
१९९८

हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्व विद्यालय
श्रीनगर-१९०००६

कश्मीर विश्व विद्यालय की हिन्दी शोध–पत्रिका

मूल्य–200/-रु०

मुद्रक– क्राउन प्रिंटिंग प्रेस
श्रीनगर, फोन–451249

क्रम

दो शब्द

दस वर्षों के दीर्घ अन्तराल के पश्चात् इस वर्ष हम फिर से विभागीय पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं। समय और वित्तीय अभाव के कारण इस वर्ष हम छोटी ही पत्रिका प्रकाशित कर सके हैं। विभाग के बाहर के एक दो लेख ही इस पत्रिका में सम्मिलित करने का हमें खेद है, क्योंकि अन्य लेख हमें समय पर प्राप्त नहीं हो सके, आशा है अगले वर्ष हम वे सभी लेख इस पत्रिका में सम्मिलित कर सकेंगे।

आज यह पत्रिका इतने लम्बे समय के पश्चात् फिर से जो आपके सम्मुख ला सके हैं , इसका श्रेय हमारे कुलपति महोदय प्रो. मो. यासीन क़ादरी साहब , कुलसचिव प्रो. ए. एम. मत्तू साहब ,शैक्षिक संकायाध्यक्ष प्रो. अब्दुल वाहिद साहब एवं हमारे कला संकायाध्यक्ष प्रो. गुलाम रसूल मलिक साहब को जाता है। इनके प्रोत्साहन से आज हम यह पत्रिका निकालने में सफल हो सके हैं। इसके लिए हमारा विभाग इन सभी महानुभावों का आभारी है।

इस छोटे से प्रयास में हम कहां तक सफल हो पाये हैं यह तो हमारे पाठकगण ही बता सकेंगे। आपके सुझावों की हमें प्रतीक्षा रहेगी। धन्यवाद।

सम्पादिका

कश्मीर के संत कवि- शेख नूरुद्दीन

डॉ० निजामुद्दीन

शेख नूरुद्दीन वली, जिन्हें नुंदऋषिं भी कहते हैं, कश्मीर में ऋषि परंपरा के प्रवर्तक हैं। चौदहवीं शताब्दी के यह संत कवि सन् 1378 में पैदा हुए और 1438 में उनका देहांत हुआ। उनके पिता का नाम सालार संज और माता का नाम सदमॉजी था। वह लल्लेश्वरी (ललद्यद) के समकालीन थे। लल्लेश्वरी के पदों को 'वाख' (वाक्य) कहते हैं और नुंदऋषि के पद का नाम 'श्रुख' (श्लोक) है। कश्मीरी के ये दोनों आदि कवि हैं। उनकी वाणी का आदर कश्मीर के हिंदू, मुसलमान दोनों करते हैं। कश्मीर सचमुच संतों, औलियाओं की पवित्र भूमि रही है। सूफियों की आध्यात्मिकता के स्त्रोत भी यहीं असंख्य मात्रा में फूटे हैं। सैयद मीर कबीर हमदानी, बुलबुल शाह, मटमालों साहब, मीर हमजा मखदूमी, पीरदस्तगीर आदि की दरगाहें, मस्जिदें इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। शेख नूरुद्दीन के पूर्वज उनके जन्म से कई सौ साल पूर्व किश्तवाड़ (जम्मू मण्डल) से आकर कश्मीर के एक गांव में बस गये थे। शेख नूरुद्दीन का जन्म केमूह गांव में और निधन च्रारशरीफ में हुआ था। च्रारशरीफ़ में ही उनका मज़ार था। जिसे 1995 में जला दिया गया था, समाज विरोधी तत्वों द्वारा। इस मजार की उन पर अपार श्रद्धा थी। डॉ० कर्णसिंह तो उनके मजार पर हमेशा हाजिरी देते थे। अब च्रारशरीफ का (विध्वंस के पश्चात्) एक मॉडल टाउन-शिप के रूप में पुनर्निर्माण किया जा रहा है और शेख नूरुद्दीन का मजार भी भव्य रूप में निर्मित किया जा रहा है।

शेख नूरुद्दीन को नुंदऋषि के अतिरिक्त शेखुल आलम,

अलमदारे-कश्मीर, शेखुल आरिफीन, शेखुल कामिल आदि नामों से भी सश्रद्धा याद किया जाता है। उनके जन्म के विषय में एक घटना काफी प्रसिद्ध है। कहते हैं जन्म के पश्चात उन्होंने कई दिनों तक अपनी माँ का स्तनपान नहीं किया सभी घरवाले चिंतित हो उठे। संयोग से एक दिन परम विदुषी संत कवयित्री लल्लेश्वरी (निधन सन् 1389) में उधर आ निकली। वह अर्धनग्न, विक्षिप्त-सी इधर-उधर घूमती-फिरती रहती थी। जब उसने बालक की यह अवस्था देखी तो गोद में लेकर स्नेह-स्नात मधुर वाणी में बोली 'ज़्यनि. यलि यनि मंद छुक न, त चनि छुक मंद छान' यानी पी ले, जब तू यहाँ आने-पैदा होने में नहीं लजाया तो अब दूध पीने से क्यों लजाता है? ऐसा कहते हुए उसने अपनी अंगुली बालक के मुँह में डाली, उससे दूध स्त्रवित होने लगा और वह बाद में माँ की गोद में भी दूध पीने लगा। तारीखे-शायक' (शायक के इतिहास) में भी इस प्रसंग का उल्लेख मिलता है। उनका विवाह ज़ून से हो गया था, ज़ून को जयदेद भी कहते हैं। उनके दो संतान हुई, लेकिन दोनों का अल्पायु में देहांत हो गया था। उनका किसी काम-धन्धे में मन नहीं लगता था। पिता ने जुलाहा का काम सिखाना चाहा परन्तु उसमें भी उन्होंने कोई रुचि न दिखाई। वह घर गृहस्थी से बिलकुल बेनियाज थे, वन-वन फिरा करते थे। वह गुफाओं में कई-कई दिनों तक रहते और अल्लाह के जिक्रो-फिक्र में लीन रहते; माता-पिता ने बहुत चाहा कि वह अपनी घर-गृहस्थी को सँभाले लेकिन सब बेसूद रहा।

एक दिन तो उनकी माँ जंगल में खूब रोई-धोई, उसकी बहुत मनुहार की लेकिन वह नहीं माने। माँ ने अंत में कहा था- मेरा दूध जो मैंने तुझे पिलाया है? इतना सुनते ही शेख नूरुद्दीन ने एक पत्थर पर हाथ मारकर कहा- ले लो अपना दूध और माँ ने क्या देखा कि पत्थर से दूध बह रहा है। अब क्या करती!

हार-थककर घर लौट आई। उनके विषय में ऐसी और भी अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

शेख नूरुद्दीन ने अपनी तृष्णाओं, कामनाओं इच्छाओं पर विजय प्राप्त की थी, अपनी इंद्रियों का दमन किया था। संसार की किसी वस्तु में उन्हें कोई रुचि नहीं थी, वह पूर्णत: निरासक्त थे, वीतरागी थे उनकी कविताओं का संग्रह 'रिशीनामा' या 'नूरनामा' कहा जाता है। उनके नूरनामा का संपादन अमीन कामिल, मोतीलाल साकी ने अधिक प्रामाणिक रूप में किया है। उनके पदों को 'श्रुख' (श्लोक) कहते हैं जिनकी संख्या तीन सौ के आस-पास है, कुछ प्रक्षिप्त पद भी मिलते हैं। लल्लेश्वरी और शेख नूरुद्दीन दोनों 14-15 वीं सदी के संत कवि हैं। उनकी भाषा प्राचीन कश्मीरी है। उनके द्वारा प्रयुक्त बहुत से शब्द आजकल कश्मीर में प्रचलित नहीं हैं। शेख नूरुद्दीन पर कश्मीर शैवमत का, सूफीमत का गहरा प्रभाव पड़ा है। वह एकेश्वरवाद के उपासक थे। उन्होंने रात-दिन अपने को अल्लाह के जिक्रोफिक्र में लीन रखा। कुर्आन पढ़ना भी इबादत है, जिक्रोफिक्र है। शेख साहब कहते हैं:-

कुर्आन परान कोने मॉदुख, कुर्आन परान गॉनो सूर।।
कुर्आन परान जिंदहि केथि रुदुख। कुर्आन परान दवघ मंसूर।।

अर्थात् कुर्आन पढ़ते-पढ़ते तुम मर क्यों नहीं गये, जिंदा कैसे हो? कुर्आन ने ही मंसूर को अपने आपसे बेखबर कर दिया। इस श्रुख में कबीर की इस भावना को भी देखा जा सकता है:-

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी पंथ निहारी-निहारी।
जी भड़ियाँ छाला पड़ी राम पुकारि-पुकारि।।

शेख नूरुद्दीन ने अपनी तृष्णाओं, कामनाओं को विजित किया, इंद्रियनिग्रह किया। अपने नफस को काबू में करने के लिए ही तो

उन्होंने सभी स्वादिष्ट व्यंजनों का त्याग कर दिया था और वर्षों 'वपुल हाक'-घास-फूँस, पत्तियाँ ही खाते रहे। उन्होंने अण्डा-मांस सब कुछ त्याग दिया था, यह निरासक्त होने, वीताराग होने का प्रमाण है। नफ्स को उन्होंने शैतान का ही रूप माना है और कहा है- इसने सब काम बिगाड़ दिए, अमल के सकल सेतु बहा दिए, नफ्स का दूसरा नाम है 'नफ्स न्योन दोजखस बदल आव'। नफ़्स को अपने काबू में करना 'जिहादे-अकबर' कहा गया है जिसके लिए पंचगाना नमाज अदा करना आवश्यक है- कुर्आन भी कहता है कि नमाज बेहयाई और अश्लील बातों से रोकती है। (सूरे अन्नह्ल 9, सूरे अनकबूत 45) काम, क्रोध, लोभ, माया, अहंकार सभी नेक अमल करने से ही हृदय को शांति मिल सकती है। हजरत मुहम्मद तुम्हारा ख़रीदार है, अल्लाह न्याय करने वाला है। शेख नुंदऋषि की वाणी से यही प्रस्फुटित हुआ:- काम करोध मूह त मद अहंकार छुए दोजखन नार छुए दिवान बराएँ।

क्रोध मुसलमान को शोभा नहीं देता, इससे कर्म-कृषि जलकर राख हो जाती है, मन की पूंजी लुट जाती है। क्रोध से आदमी की सारी साख समाप्त हो जाती है:-

क्रोदे सोद रावइ पानस। क्रोदे कर त कारन दजे।।

क्रोदे चूरपई खजानस। क्रोदे मो मुसलमानस पजे।।

गीता में यह कहा गया है कि इंद्रियों पर संयम रखना चाहिए ज़िसकी इंद्रियाँ अपने स्वाधीन हो जाएँ, उसकी बुद्धि स्थिर हो गई। विषय चिंतन से काम उत्पन्न होता है। काम से क्रोध उत्पन्न होता है और क्रोध से सम्मोह (अविवेक), सम्मोह से स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से व्यक्ति का सर्वनाश होता है। (2.62-63) विषयों में संचार अर्थात् व्यवहार करने वाले इंद्रियों

के पीछे-पीछे मन जो जाने लगता है, वही पुरुष की बुद्धि को ऐसे हरण किया करता है जैसे पानी में नौका को वायु खींचती है। (2-67)

शेख साहब ने सत्कर्म पर अधिक बल दिया है। बेअमल आदमी को सुख-शांति कैसे प्राप्त होगी? उनकी मान्यता है जो जैसा अमल करेगा उसे वैसा ही उसका सिला, फल मिलेगा 'युस कर गोंगुल स कारेकराद'- जो बोयेगा सो काटेगा। एक श्रुख में कहते हैं-

आरत दछ डूनि डंगी। आरत हूनस मंगी ह्रोंग।।

यानी बेअमल व्यक्ति अंगूर, अखरोट से हाथ धो बैठता है, स्वयं कर्म न करने वाला व्यक्ति इतना नासमझ होता है कि कुत्ते से सींगों की आशा करता है। संत कवि तुलसी ने कर्म पर विशेष बल दिया है। यह संसार ही कर्मस्थली है- 'कर्म प्रधान विस्व करि राखा, जो जस करइ से तस फल चाखा' यह संसार दारुल अमल है और परलोक में मनुष्य के किए कर्मों का फल मिलता है, इसी को 'दारुल जजा' कहते हैं। शेख नूरुद्दीन ने कर्महीन जीवन की निंदा की है और ईश्वर-'भक्ति में इतना डूब जाने को कहा है कि वह अपना अस्तित्व ही भूल जाए। ऐसा स्नान किया जाए कि कोई न-देखे, अपने आपको लोगों की नजरों से छिपाकर ज्ञान में डूब जा, लेकिन कर्म करना न भूले। उसके पश्चात् तुम अपने अस्तित्व को भूल जाओगे-

श्नान केर्यीजि युथ न कांह डेशी। ग्याना केर्यीजि गुपित पान।।
क्रिया केर्यीजि युथ न जाथ। मशि मशि निशि अद पनुन पान।।

अल्लाह का जलवा, उसका रूप, उसकी परमशक्ति सर्वत्र विद्यमान है। कण-कण में वह्र समाया हुआ है। वही पैदल चलता

है, वही रथ पर सवार है 'सु छु प्यादते सु छु रथ सु छु सोरड गुपिथ पान।' वही अनादि, वही अंत है। मनुष्य अपने हृदय का कलुष, पाप दुर्भावना दूर कर करबद्ध होकर उसी अल्लाह की बंदगी करें तभी संभव है उसे नरकाग्नि से छुटकारा मिल सकता है- 'अव्वल सुए आखिर सुए, नदबल वुसिधि मल कुसिद' वह उस अनादि अनंत अल्लाह को ही वह इस लोक और परलोक एक मात्र सहारा है। वही खाक को गुलजार बनाने वाला है। सब कुछ त्यागकर वह अल्लाह का दामन पकड़े है, उसी का दीदार करना चाहता है-

सांय तरावुध रुटुख म्य च्य
म्य च्य हावतम दीदार

यह सब कुछ अल्लाह को समर्पण करने की भावना गीता में कृष्ण की वाणी के समान ज्ञात होती है- 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'। उधर तुलसी के राम तो उसके लिए सब कुछ हैं, सकल आस-विस्वास का आधार है-

राम भरोसो, राम बल, रामनाम विस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास।।

शेख नूरुद्दीन अल्लाह के निकट है, अल्लाह उनके निकट है। उसकी संगति से-संतकवि ने सुख प्राप्त किया। व्यर्थ ही अन्यत्र उसे खोजा, वह तो अपने देश में ही हैं-

सु म्य निशे ब तस निशे। म्य तस निशे करार आव।।
नहक छोंडुम म्य परदीशे। पनने दीशे म्य यार आव।।

सचमुच अल्लाह अपने बंदे के करीब हैं- बिल्कुल सांस की नाड़ी के पास। कबीर के मतानुसार 'सब सांसों की सांस में'। व्यर्थ ही कस्तूरी को मृग वन में खोजता फिरता है जबकि वह

उसकी नाभि में होती है।

शेख नूरुद्दीन पर शैवदर्शन का भी काफी प्रभाव था। जिस प्रकार लल्लेश्वरी ने शिव के कण-कण में दर्शन किए और अपने आप को पहचानने पर बल दिया तथा यह कहा है-

शिव छुय थलि थलि रोजान। मो जान ह्योंद त मुसलमान।।
त्रुकुय छुख त पान प्रजनाव। स्वय छ्य साहिबस जानी जान।।

कश्मीर-शैवदर्शन का यह अद्वैतवाद रूप सुस्पष्ट है। परमशक्तिमान ईश्वर स्थल-स्थल में विराजमान है ! मनुष्य-मनुष्य में, हिंदू-मुसलमान में क्या भेद सब समान हैं जिसने अपने आपको पहचान लिया उसने साहब को (ईश्वर) को पहचान लिया। पैगम्बर हजरत मुहम्मद (571-633) ने भी कहा है- जिसने अपने नफ्स को पहचाना उसने अल्लाह को पहचाना, 'मन अराफा नफसाहु फकद अराफा रब्बहू'।

नुंदऋषि आध्यात्मिक संत थे- उन्होंने अव्वल रिशी अहमद रिशी' पद में अपना सिलसिला पैगम्बर हजरत मुहम्मद से जोड़ा है। उन्होंने कश्मीर में जिस ऋषि-परंपरा की शुरूआत की, उसमें सैकड़ों ऋषियों के नाम शामिल हैं और उनके शिष्यों में कुछ जनमानस में अच्छा स्थान है, उनके आस्ताने व मजार हैं। बाबा नसरुद्दीन, बाबा कुतुबुद्दीन, बाबा जैनुद्दीन, बाबा लतीफुद्दीन आदि ऐसे ही संत ऋषि हैं। शाम बीबी, बहत बीबी, दहत बीबी स्त्रियों में संतात्माएँ थीं। स्वयं शेख नुंदऋषि मीर मुहम्मद हमदानी (1314-1386) के मुरीद थे। हमदानी साहब जब ईरान से कश्मीर आए तो अपने साथ सात सौ शिष्य लेकर आए थे, जिन्होंने कश्मीर में इस्लाम के प्रचार-प्रसार का श्रीगणेश किया। नुंदऋषि पहुँचे हुए संत थे, सिद्ध थे। उन्होंने वर्षों एकांत में अल्लाह का जिक्र किया, चिल्लाकशी या इबादत रियाजत की उनमें केमूह, हेचीपोरा,

सुतिहारन, द्रेगाम, रूपवन आदि हैं। अपने जीवन के अंतिम सात वर्ष (सन् 1435-1441) रूपवन में व्यतीत किए। यहीं उनके पूर्वजों को जागीर प्रदान की गई थी। यहीं उनका निधन (सन् 1438) हुआ। उनकी शवयात्रा में तत्कालीन कश्मीर के लोकप्रिय राजा जैनुल आविदीन (सन् 1420-1470) भी शरीक हुए थे। उन्हें कश्मीर में 'बड़शा' यानी बड़ा बादशाह के नाम से याद किया जाता था। 'बड़शा' ने उनके शव को कंघा दिया था और शेख साहब के नाम से सिक्का भी चलाया जिस पर लिखा था- 'सिक्का शुद रोशन ज शाहे नूरुद्दीन।' यह सिक्का बड़शा के बाद पठान गवर्नर अता मुहम्मद खान ने बनवाया था। उन्होंने, बड़शा द्वारा बनवाई गई शेख साहब की जियारत को दोबारा तामीर कराया था क्योंकि उसमें आग लग गई थी। अक्टूबर के महीने में प्रतिवर्ष वहाँ उर्स होता है।

नुंदऋषि का कलाम यहाँ के जनमानस को आध्यात्मिक आलोक प्रदान करता रहा है। ललद्यद (लल्लेश्वरी) के 'वाखों' (पदों) को मुसलमान भी पढ़ते हैं और नुंदऋषि के श्रुख (श्लोक) हिंदू भी पढ़ते हैं। दोनों संप्रदाय के लोग जिस धार्मिक सहिष्णुता का प्रदर्शन कश्मीर में करते हैं, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं, स्वयं का देखा है, स्वयं का अनुभव है (यह अलग बात है कि कई वर्षों से जो अशांति और आतंक का माहौल यहाँ रहा है उसने सभी को प्रभावित किया है)। शेख नूरुद्दीन के श्लोकों को देखिए तो वहाँ एक आध्यात्मिक सागर लहराता मिलेगा, जिसकी तह में अनमोल हीरे-मोती चमकते दमकते नजर आएंगे। कश्मीर में असह्य शीतकाल (चिल्ला कलान, 40 दिन); (21 दिसम्बर से 30 जनवरी फिर आगे 28 फरवरी तक) में भारी हिमपात होता है। बर्फ से पाइप क्या झीलें तक जम जाती हैं। शेख नूरुद्दीन कहते हैं-

यख तुल कतुल शशगरंठ शीन।
तिम ब्यून ब्यून पाद करय आशीन।।
या मथ खातुख पूरि कनि रो।
तामथ तिमिन चून अकुय गो।

अर्थात् जमी हुई बर्फ़, बर्फ की जमी छतों से लटकती बर्फ़ की लम्बी गांठ और बर्फ सब पृथक्-पृथक् परिलक्षित होते हैं। जब उन पर सूर्य-रश्मियाँ पड़ती हैं तो सब एक ही पानी हो गए। इसे प्रसाद की इन पंक्तियों से मिलाइए-

नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था, एक सघन।
एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या तेतन।
और कबीर की वाणी भी यही व्यक्त करती है. कि-
पानी ही से हिम भया, हिम है गया बिलाय।
कबीरा जो था सोइ भया, अब कछु कहा न जाय।

या फिर यह दोहा-

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जल ही समाना, इहि तथ कथ्यौ गियानी।।

अद्वैत की भावना प्रतिबिंबवाद की पोषक है। लल्लेश्वरी को भी जल, बर्फ, यख में तीनों में खुदा-ए कायनात का ज़लवा नज़र आता है।

मृत्युदर्शन की शेख नूरुद्दीन के यहाँ गहनानुभूति विद्यमान है। कहते हैं सांप के डर से गज भर भाग सकते हैं, शेर के आक्रमण से बचने के लिए कोस भर, दीनदार से साल भर, लेकिन मृत्यु तो पलक झपकने की फुर्सत नहीं देती। उन्होंने मृत्यु काल को शेर समान माना है, वह भेड़ की भांति मनुष्य को चुनकर उठा ले जाता है। काल-सुरा का पान किए बिना स्वस्थ होना असंभव है।

अपनी बात को बिंब और प्रतीकों में कहने वाले नुंदऋषि कहते हैं कि काया-चंदन सड़ गई। मैं घोड़े पर सवार और उसने मेरी लगाम ही चबा डाली। सोने और पीतल की एक जैसी आभा देखकर मेरी जान ही निढाल हो गई जब मैंने देखा कि सुंदरता के स्वामी लोगों के पांव तले रौंदे जाते हैं, मूर्ख प्रसन्न हैं तो मैंने वनवास जाने का निर्णय लिया। यह व्यंग्योक्ति आज भी प्रासंगिक है। आज भी अयोग्य लोग ओगे बढ़ते हैं, योग्य पीछे धकिया दिए जाते हैं। शेखुल आलम ने तत्कालीन समाज का जो यथार्थ और व्यंग्यमय चित्रण किया है उसकी प्रतिच्छाया हमारे समाज में आज भी देखी जा सकती है। वह कहते हैं- आगे चलकर खुबानी के साथ नाशपाती व सेब पकने लगेंगे, माँ बेटी साथ-साथ हाथ में हाथ डालकर स्वतंत्रता से घूमेंगी और पर-पुरुष के साथ रात बसर करेंगी। आज नैतिक मूल्यों का ही ह्रास होता दिखाई देता है, सेक्स हिंसा का जो वीभत्स रूप नजर आता है, यह समाज के पतन का ही पेशखीमा है। नुंदऋषि के ये शब्द भी देखिए-

तलि मालि आसनई तिथि, केरन, टंग चूंट पयनइ चेरन स्याथ।
माज कोरि जोरा इकवट, नयरन, दोह ध्यान बरन गैरन स्यथ।।

उनके व्यंग्य बाणों से मुल्ला-मौलवी भी नहीं बचे। कहते हैं मुल्लाओं की दस्तार पगड़ी भी क्या शानदार है, कैसे अकड़कर चलते हैं। पांव में जरी की जूती है। तन पर चौगा है। बगल में खाने की तश्तरी है...। इसके विपरीत उनके प्रेम का, भगवद्भक्त का रूपक भी देखने योग्य है। वह कहते हैं प्रेम तेज धार की तलवार है (करवार की धार पे धावना है) उसके वार को सहना है। प्रेम भिड़ के छत्ते पर काबू पाना है। प्रेम माँ को इकलौते बेटे का मरना है, चैन आए तो कैसे? प्रेमी वही है जिसका दामन पाक-साफ रहे। जो प्रेम में 'रातभर' जागता है उसी को जन्नत

मिलेगी। कबीर की शब्दावली में जूँ की तूँ धरि दीन्ही चदरिया यानी बिना दाग के, बिना पापाचार किए इस संसार से जायेगा, वही जन्नत में दाखिल होगा। सत्कर्मी सदाचारी, नेक अमल करने वाले, अल्लाह की बंदगी में शब-बेदारी करने वालों को ही स्वर्ग नसीब होगा। शेखुल आलम का दर्जा कश्मीर के सूफी-संतों में सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने आध्यात्मिकता का जो उपवन लगाया उसकी सुगंध से यह वादी ना जाने आगामी कितनी शताब्दियों तक सुगंगिधत रहेगी, मुअत्तर रहेगी।

******

आधुनिकोत्तरवाद : एक विवेचन

कुद्दूस जावेद

साहित्य सर्जन यदि साधना है तो साहित्य समीक्षा, तपस्या। दोनों स्थितियों में अभिव्यक्ति की यात्रा सितत्व की गहराइयों से प्रारम्भ होती है , किन्तु हर विचार अपने मूल रूप में कागज़ तक पहुंच पाए यह आवश्यक भी नहीं। आज के संदर्भ में, नित नए विचारों , सिद्धांतों का अत्यधिक दबाव हर रचनात्मक विचार को टूट–फूट और अपना रूप बदलने के लिए विवश करता रहता है। टूट–फूट का यह कर्म प्राकृतिक एवं आवश्यक भी हो सकता है, होता भी है, किन्तु यह क्रम साहित्य और साहित्यकार के लिए प्रायः घातक भी सिद्ध होता है, विशेष रूप से जब कोई विचारधारा, सिद्धांत अथवा आंदोलन फैशन के रूप में , पाश्चात्य साहित्य के कोरे अनुकरण के कारण या अपने रचनात्मक बौनेपन को छुपा कर साहित्यकारों की अगली पंक्ति में घुसपैठ मात्र के लिए अपनाया जाए।

भारतीय भाषाओं में गत दशकों में आधुनिकता के नाम पर जो और जितना कुछ लिखा गया उन में अच्छे एवं स्तरीय साहित्य की तुलना में बुरा और निम्न कोटि का साहित्य अधिक है। हर प्रकार के वाद (ISMS) को विभिन्न रूपों में बरत लेने (आज़मा लेने) के पश्चात अब कहीं जाकर वह सही आधुनिकता सामने आपाई है। जिसकी नींव हमारी अपनी जमीन,संस्कृति

और सभ्यता में गड़ी है और जिसके कारण एक ओर तो अपनी परम्पराओं को संयम एवं संतुलन के साथ साहित्य में जीने की प्रवृत्ति आम हुई है दूसरी ओर जनसाधारण के मानसिक एवं वैचारिक Enlightenment के लिए रास्ता भी साफ हुआ है। जो हमारे समाज में गतिशील विचारधारा और जीवन शैली को सार्थक बनाने के लिए आवश्यक है। यही बातें भारतेन्दु , निराला ,दिनकर , महादेवी वर्मा और फणीश्वर नाथ रेणू से लेकर नामवर सिंह , हरिवंश राय बच्चन , राम विलास शर्मा , धर्मवीर भारती रामस्वरूप चतुर्वेदी ,केदारनाथ सिंह, गिरिजा कुमार माथुर , राजेन्द्र यादव, शिवानी, मधुकर सिंह, गंगा प्रसाद विमल तथा अरूणाकमल आदि की रचनाओं में भी मिलती हैं। प्रगतिशीलता से लेकर आधुनिकता और अतिआधुनिकता तक हिन्दी साहित्य को पूर्णतः संयम एवं संतुलन के साथ आगे बहुत आगे ले जाने वाले इन महारथियों का लेखन समसामयिक चेतना और बदलते हुए सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ा होने के बावजूद अपनी सभ्यता अपनी संस्कृति से कितना गहरा कितना अटूट रिश्ता रखता है यह सभी जानते हैं। किन्तु दूसरी ओर गलत आधुनिकता ने साहित्य में एक टेढी लीक निकाल कर साहित्य की रचनात्मक गति को कितना आघात पहुंचाया है यह भी सर्वविदित है। नुकसान साहित्य का भी हुआ है और साहित्यकारों का भी। यह अहसास -- साहित्य को सही रचनात्मक लीक पर लाने की बुनियाद बन रहा है। लेकिन इस से पहले कि खाई को पाटा जा सके आधुनिकोत्तरवाद (Post Modernism) की बात चल पडी है। यह तो अभी से नहीं कहा जा सकता कि आधुनिकोत्तरवाद हिन्दी या भारतीय साहित्य के संदर्भ में कोई घातक या नकारात्मक विचारधारा ... है किन्तु अपनी सांस्क्रतिक जडों एवं साहित्यिक परंपराओं की अवहेलना कर केवल फैशन स्वरूप आधुनिकोत्तरवाद

को अपनाया गया तो यह पगडी के ऊपर टोपी पहनने जैसा ही होगा और इसके घातक परिणाम भी निकल सकते हैं। तथ्य तो यह है कि बड़े शहरों में ऊपरी सतह पर दिखाई देने वाले कुछ बदलाव ,कुछ सांस्क्रतिक टूट–फूट के बावजूद हमारे समाज , हमारी जीवन–शैली में अभी तक आधुनिकता ही पूर्ण रूप से नहीं आसकी है ,तो फिर आधुनिकोत्तरवाद की गुन्जाइश कहां निकलती है ? गुंजाइश निकल सकती है या निकाली जा सकती इस पर विचार करें तो फिर कई प्रश्न हमारे समक्ष आखडे होंगे। हां यदि अपने सामने , आसपास की ज़िन्दगी और "कागज की ज़िन्दगी" में अलग–अलग मानसिकता और मापदंड को प्रचलित कर समाज़ और साहित्य दोनों में झूठ का आडम्बर रचाना है तो फिर बात अलग है। साहित्य --- जीवन और जीवन शैली को जीने तथा प्रतिबिम्बित करने का ही कर्त्तव्य नहीं निभाता वरन् , जीवन की अगुवाई भी करता है। आधुनिकता एक विचारधारा है या थी जिसका उद्देश्य नकारात्मक और पिछडेपन की द्योतक परप्पराओं के स्थान पर जीवन को सामूहिक रूप से उन्नत्ति की ओर ले जाने वाले (Values) को अपनाना था किन्तु आधुनिकोत्तरवाद एक सांस्क्रतिक स्थिति (Cultural Phenomenon) है जिस का उद्देश्य सामने से ''सच'' दिखाई देने वाले ''यथार्थ'' के ''असल यथार्थ'' को सामने लाकर जीवन और समाज के विरोधाभासों को बेपरदा किया जा सके। आधुनिकता से जुड़े कुछ चिंतकों जैसे हैबरमस (Habermas) इगलटन (Eagolton) था गाट (Gott) आदि ने आधुनिकोत्तरवाद को आधुनिकता का विरोधी कहा है उन के अनुसार आधुनिकोत्तरवाद (Enlightenment Project of Modernity) के विरुद्ध एक षडयंत्र एक बगावत है क्योंकि आधुनिकता ने परम्पराओं को कांट–छांट कर जीवन और जीवन शैली मे जो संतुलन उत्पन्न किया था आधुनिकोत्तरवाद ने उसे फिर से

असंतुलित कर दिया है। आधुनिकता का अधिक जोर यथार्थ पर था किन्तु आधुनिकोत्तरवाद मूलतः "भाषा" से बहस करता है क्योंकि भाषा या डिसकोर्स (Discourse) से ही उन अंतरविरोधों और विरोधाभासों की संरचना होती है जिन से यह संसार अर्थ (Meaning) प्राप्त करता है . जिसे Amorphous समझा जाता रहा है तथा जहां वस्तु के संदर्भ में "यथार्थ" है और उस यथार्थ की व्याख्या एवं विवेचना है । वहां अन्तरविरोध तथा विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न होगी ही। आधुनिकता भी वस्तु ... तथा समाज की समस्याओं का विवेचन करते हुए "यथार्थ" को ही अपने समक्ष रखती है किन्तु आधुनिकोत्तरवाद समस्त समस्याओं अंतरविरोधों और विरोधाभासों को इस प्रकार बरतता है कि उनसे ही उस पूरी सांस्कृतिक स्थिति को समझने में सहायता मिलती है जिस सांस्कृतिक स्थिति को हम " आधुनिकोत्तरवाद " कहते हैं । आधुनिकोत्तरवाद किसी भी दृष्टि से Absolitist नहीं है इस का कारण यह है कि स्वयं जीवन में भी किसी प्रकार के Hierarchial प्राथमिकता और Continuity की ठोस व्यवस्था (System) स्थापित करना असंभव ही नहीं व्यर्थ भी है (Fokkema - 1986) । हालांकि इस संसार में हर प्रकार की व्यवस्था विद्यमान (मौजूद) है और इन की संरचना मानव जाति ने ही की है यही इन की सार्थकता है और यही इनकी सीमा । इतिहास में हर प्रकार की व्यवस्था का महत्व मानव जाति की संरचनात्मक उपलब्धि से अधिक नहीं होता किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि मानव समाज में व्यवस्था , संतुलन अथवा अचार संहिता की कोई आवश्यकता नहीं या यह कि यह सभी वस्तुएं अर्थहीन हैं ऐसी बात नहीं , यही कारण है कि आधुनिकोत्तरवादी लेखक अंतरविरोधों और विरोधाभासों को बेरहमी से बेनिकाब करने के

बावजूद समाज में व्यवस्था और Continuity का समर्थन करता है क्योंकि यही वह वस्तुएं हैं जिन से "सच्चाई" (Truth) की असल सच्चाई और मूल्यों (Values) को निश्चित करने में सहायता मिलती है और इसी आधार पर आधुनिकोत्तरवादी लेखक डिस्कोर्स (Discourse) के माध्यम से स्थानीय, सीमित अस्थाई और सामूहिक सच्चाइयां आधुनिकोत्तर सच्चाइयों की रूपरेखा दर्शाती हैं। चार्लस रसेल (Charles Russel) ने भी इस बात की पुष्टि की है कि आधुनिकोत्तरवादी साहित्य मूलतः यह मानता है कि सामाजिक प्रेरणाएं ही हर प्रकार के क्रियाकलापों, कल्पनाओं एवं मान्यताओं की संरचना करती है जानबेनविले (John Ban Ville) के उपन्यास "केपलर" (Kepler) में या क्रिस्टा वोल्फ (Christa Wolf) के उपन्यास (Cassandra) में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं। किन्तु ध्यान से देखें तो फणीश्वर नाथ रेणु धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव रामस्वरूप चतुर्वेदी शिवानी गिरिजा कुमार माथुर गंगा प्रसाद विमल आदि की रचनाओं में भी ऐसी ... सीमित अस्थाई एवं सामाजिक सच्चाइयों को उनके असली रूप में देखा जा सकता है। इन महारथियों की रचनाओं में प्रस्तुत सच्चाइयां ही इस संसार को भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के परिवेश में रचनात्मक अर्थ प्रदान करती हैं हालांकि इन्होंने जो कुछ भी लिखा आधुनिकोत्तरवाद या किसी भी वाद का मुखोटा लगा कर कदापि नहीं लिखा। हां इन की रचनाओं में वह विशेषताएं पहले से ही मिलती हैं जिन बातों पर आधुनिकोत्तरवादी लेखक अत्यंत बल देते हैं।

आधुनिकोत्तरवादी लेखक यह नहीं कहते कि यह संसार अर्थहीन है फिजूल है अपितु यह कहते हैं कि संसार में किसी भी वस्तु का जो भी अर्थ मान लिया जाता है वह महत्त्वहीन और फिजूल है क्योंकि पत्येक "अर्थ" मानव की ही संरचना है अतः

अर्थ न तो स्थाई होता है न असीमित बल्कि हर व्यक्ति चाहे वह लेखक हो अथवा पाठक या फिर एक आम आदमी हर वस्तु यथार्थ तथा शब्द को स्वयं अर्थ का लिबास पहनाता है। इस संदर्भ में यह भी हो सकता है और होता भी है कि कोई एक व्यक्ति किसी एक वस्तु यथार्थ या शब्द को देख, सुन या पढ कर किसी एक अर्थ की संरचना (Construction) करे और दूसरा व्यक्ति उस अर्थ को नकार दे (Deconstruction) और किसी अन्य अर्थ की संरचना करे। इसी तथ्य के आधार पर "पाठक आधारित आलोचना" (Reader Based Criticism) की थियोरी (Theory) प्रस्तुत की गई है। रोमन जैकोबसन (Roman Jakobson) जोनथन कुलर (Jonathan Culler) सोसियर (Saussure) तथा बार्थ (Barth) आदि Structuralist तथा Post Structuralist चिंतकों ने साहित्य लेखक कृति (Text) यथार्थ तथा भाषा आदि के विषय में जो सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं उनके कारण विश्व स्तर पर वाद-विवाद के दरवाजे खुल गए हैं। भाषा के विषय में सदैव यही सोचा गया है कि भाषा या तो लेखक के मन मस्तिष्क की झलक है अथवा यह उसके बाहर के संसार की झलक है जो लेखक के मस्तिष्क में उभरती है अर्थात् लेखक की भाषा को उसके व्यक्तित्व का अंश घोषित किया गया और साहित्य को व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति। फिर भी जैसा कि सोसियर ने कहा है भाषा का अस्तित्व लेखक से पहले है अर्थात् मूल शब्द या और शब्द से ही टेकस्ट (Text) की उत्पत्ति हुई।

"In the beginning was the Word , and the word created the text".

किन्तु भाषा तथा साहित्य के संदर्भ में पाश्चात्य .. के चिंतकों के विचारों विशेष रूप से सोसियर बार्थ , जोनबेनथन नार्थरोप फराइ (Northrop Frye) कलाड लेवी स्ट्रास (Claud Levi

Strauss) तथा रूसी Formalistic चिंतकों शकलोवस्की, तोमाशोवस्की मीखइलबखतिन तथा तोदोराफ आदि के विचारों एवं सिद्धांतों ने साहित्यिक कृति लेखक भाषा और पाठक की स्वतंत्रता आदि से संबंधित कई प्रश्नों को प्रज्जवलित कर दिया है। इस प्रकार आधुनिकोत्तरवाद जो जीवन के समस्याप्रद (Problematic) होने पर जोर देते हुए साहित्य को भी समस्याप्रद ही मानता है साहित्य की किसी भी पूर्व घोषित परिभाषा वधन आदि को मानने से इन्कार करता है।

आधुनिकोत्तरवादी चिंतकों का यह भी मानना है कि आज साहित्य की सभी विधाओं तथा रूपों के बीच की सभी (Formatic) सीमाएं ठोस तथा स्थाई न हो कर तरल तथा परिवर्तनशील हो चुकी हैं अतः कोई भी साहित्यिक कृति निश्चित रूप से किसी विधा विशेष के अंतर्गत आए यह आवश्यक नहीं। किन्तु गहराई से देखें तो अपने नवीन बल्कि सामान्य विचारों तथा सिद्धांतों के आधार पर स्वयं आधुनिकोत्तरवाद की एक समस्या बन गया है लेकिन आधुनिकोत्तरवाद पूरे साहित्य दृश्य को ही बदल डाले यह भी हो सकता है।

आधुनिकोत्तरवाद के संबंध में टाइनबी ने अपनी पुस्तक Study of History में, इहब हसन ने अपनी पुस्तक The Dismemberment of Orpheus : Towards a post Modern Literature में लियोटार्ड J.F.Lyotard ने The Post Modern Condition : A Report on Knowledge में लिंडा हच्यन Linda Hucheon ने Poetics of Post Modernism में तथा अन्य सैकड़ों चिंतकों ने अपने-अपने लेखों में आधुनिकोत्तरवाद संबंधित जो ... की हैं उन्हें समझना और उन पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि अंततः उद्देश्य तो साहित्य सर्जन की गति को सही रचनात्मक दिशा में तेज ही करना होता

है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के संदर्भ में हजारों वर्षो से भारतीय चिंतकों लेखकों भाषाविदों आदि ने भाषा, कला तथा साहित्य के विषय में जो विचार , सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं वह आज के संदर्भ में भी इतने सटीक, सुदृढ़ तथा .. हैं। तेजी से बदलते आज के भारतीय समाज साहित्य तथा जीवन शैली की अगुवाई के लिए काफी हैं। पाणिणी ... भृर्त हरि, नागेश भट्ट, भरतमुनि, सेलेकट .... आन्नदवर्धन, महिमा भट्ट, अभिनव गुप्त, धनंजय, निरंजय देव तथा हेमचन्द्र आदि के विचारों तथा सिद्धांतों में इतनी शक्ति है कि अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के परिपेक्ष में हमारे समाज, हमारी बदलती हुई सांस्कृतिक स्थिति तथा जीवन शैली को सही लीक दे सकें।

हिन्दी नाटक में डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल की भूमिका

डॉ० ज़ौहरा अफ़ज़ल,
रीडर, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर

हिन्दी रंगमंच अथवा नाटक का प्रादुर्भाव सबसे पहले भारतेन्दु काल में हुआ। भारतेन्दु काल से पूर्व तक आधुनिक परम्परा के नाट्य लेखन की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जा सका था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही हिन्दी नाटकों और रंगमंच की परम्परा और नाट्य चिन्तन का परिचय लोगों को दिया।

भारतेन्दु के नाटकों से ही आधुनिक गद्य परम्परा का उदय होता है। इनसे पूर्व हिन्दी में नाटक लिखने की कोई परम्परा नहीं थी। भारतेन्दु युग पूरी तरह से पारसी रंगमंच से प्रभावित था। पूरा पारसी रंगमंच जो पूर्णरूप से पश्चिम के व्यावसायिक रंगमंच की नकल था। यह रंगमंच पैदा कहीं भी हुआ हो पर इसका विकास पूर्णरूप से हिन्दी भाषी क्षेत्र में ही हुआ था।

भारतेन्दु का 'अन्धेर नगरी' नाटक आधुनिक नाटक में नई दिशाओं की तलाश के संदर्भों को सार्थकता देता हुआ सामने आता है। यह नाटक भारतेन्दु की नाट्य-साहित्य यात्रा का अपने आप में एक इतिहास है। जिससे हमें नाट्य-साहित्य में भारतेन्दु के योगदान का स्वस्थ, पारम्परिक और ऐतिहासिक परिचय मिलता है।

जो हिन्दी नाटक भारतेन्द युग में विकसित हुआ, वही प्रसाद जी की कोशिशों से अपने उत्कर्ष को पहुँचा। यदि प्रसाद जी को

नाट्य-साहित्य का सम्राट कहा जाये तो कुछ ग़लत न होगा। इनके नाटकों में देश-भक्ति, राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना का बहुत ही सुन्दर समन्वित रूप देखने को मिलता है। जयशंकर प्रसाद जी ने भारतीय इतिहास का बहुत गहराई से अध्ययन किया और इसी अध्ययन के द्वारा ऐसे ऐतिहासिक नाटक लिखे जिसमें भारतीय इतिहास के ऐसे तथ्यों पर भी रोशनी पड़ी, जिन्हें पाश्चात्य इतिहासकारों ने अत्यन्त ग़लत और बिगड़ी हुई शकल में चित्रित किया था। प्रसाद जी के प्रयत्न से ही हिन्दी नाटकों के बाह्याकार और अवयवों के विन्यास में परिवर्तन और नयापन आया। प्राचीन नाट्यशास्त्र में जिन दृश्यों को वर्जित कर दिया गया था जैसे-वध, आत्म-हत्या, युद्ध आदि के दृश्यों को खुलकर दिखाया जाने लगा। प्रसाद जी ने हिन्दी नाट्य-साहित्य को एक नई शक्ति एंव उत्तेजना प्रदान की।

प्रसाद के पश्चात् नाट्य-साहित्य में चेखब, इर्सन, शॉ, गाल्सवर्दी के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता।

आधुनिक हिन्दी नाट्य-साहित्य का एक मोटा-सा जायज़ा लिया जाये तो जहाँ हिन्दी-नाट्य साहित्य के विकास को राह में आई रुकावटों का पता चलता है, वहाँ इन रुकावटों के मोटे कारणों का भी सही बीज मिल जाता है।

हिन्दी नाटक अपनी अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा पीछे क्यों रह गया ? इसका मोटा-सा कारण एक तो ठोस रंगमंच का अभाव रहा है और दूसरा कारण जो किसी भी लिहाज़ से उपेक्षित नहीं किया जा सकता, वह है उपलब्ध नाट्य-साहित्य के प्रति उपेक्षित दृष्टि भरा व्यवहार, जो किसी अन्याय से कम नहीं। इस संदर्भ में यहाँ स्थूल रूप से यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि हमारे साहित्यकार और समीक्षक अक्सर मूल्यांकन करते

समय यह तथ्य भूल जाते हैं कि हमारे नाटक के पास न तो रंगमंच की सुविधा ही है और न ही स्वस्थ श्रोता समाज ही। द्वन्द्व नाटक का बीज बिन्दु है, नाटक का प्राण है और वर्तमान जीवन संघर्ष से लबालब भरा हुआ है फिर भी हमारे नाट्य-साहित्य की स्थिति उतनी सन्तोषजनक नहीं जो कि पूरे जीवन का सही रूप मंच पर प्रस्तुत कर सके।

जयशंकर प्रसाद के बाद के नाटककार जैसे, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर, भुवेश्वर प्रसाद आदि के नाटकों में रंगमंचीय अर्थ तो था पर वह अधिक आगे नहीं बढ़ सका। इसलिए सन् 1950 के बाद जब नये नाट्यलेखन का आरम्भ हुआ तो इस नये युग में नाटककार ने अपनी भूमिका को ही नहीं पहचाना बल्कि अस्तित्व का प्रश्न भी उठाया। और ऐसी विषय परिस्थितियों में भी अपने दायित्व को स्वतन्त्रतापूर्वक निभाने का भी प्रयत्न किया।

नये नाटककार ने सम्पूर्ण दायित्व को पूरी जागरूकता के साथ संभाला और इस क्रम में लक्ष्मी नारायण लाल का नाम बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। जिस समय रंगमंच की दृष्टि से हिन्दी के पास पर्याप्त नाटक नहीं थे और उसे नये नाट्य-शिल्प, नये रंगशिल्प और सार्थक नाटकों की तलाश थी, डॉ० लाल ने निरन्तर नाटक लिख कर नाटक और रंगमंच को एक दूसरे का पर्याय बनाया और हिन्दी नाटक और रंगमंच दोनों के लिए नवीन दिशाओं की खोज की।

डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल ने जिस समय अपनी नाटक यात्रा शुरू की उस समय नाट्य में ड्रामा, नाटक, नाट्य, रंगमंच-, थियेटर इत्यादि शब्दों का व्यवहार विभिन्न असंगतियों के साथ किया जाता था। इसलिए वे अपने अनुभूत सत्यों को छू नहीं पाते थे।

यह सब देख कर ही लाल जी ने चिन्तन के नये प्रतिमानों की प्रतिष्ठा एवं स्थापना की। आपने नाटक के स्वरूप, रचना प्रक्रिया और उसके आधारभूत तत्वों के प्रति अपनी मान्यताओं की स्थापना की, एकांकी विषयक चिन्तन को स्पष्ट रेखांकित किया। इन्होंने लोक-नाट्य पर भी अपने विचारों एवं मान्यताओं को स्पष्ट करने का कार्य किया। नाट्य विषयक उनके चिन्तन में नाटक से सम्बन्धित किसी भी बिन्दु को अछूता नही छोड़ा है।

डॉ० लाल नाटक को ड्रामा का पर्याय स्वीकारते हैं। संस्कृत के 'नाट्य' शब्द को वह 'थियेटर' का पर्याय मानते हैं। वर्तमान युग में 'थियेटर' 'रंगमंच' के लिए प्रयुक्त होता है। अन्यान्य साहित्यिक विधाओं में नाटक अपनी रंगमंचगत मर्यादाओं के कारण बहुत भिन्न है। 'ड्रामा' लेखक के शब्दों में अपनी रचना करता है। किन्तु वे शब्द जो ड्रामा के पात्रों के मुख से उजागर होते हैं, अपने में स्वतन्त्र नहीं। ड्रामा के लिए रंगमंच के सम्बन्ध में चली आ रही मान्यताओं एवं धारणाओं का उन्होंने न सिर्फ विश्लेषण किया बल्कि उसका सही दिशा-निर्देशन भी किया। डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल के अनुसार 'थियेटर' के लिए रंगमंच शब्द बहुत उपयुक्त नहीं है। जिस प्रकार संस्कृत का नाट्य शब्द अपने आरम्भ में एक विस्तीर्ण सीमाओं वाला गौरवपूर्ण अर्थयुक्त शब्द था, किन्तु कालान्तर में वह रंगमंचीय नाटक के अर्थों में प्रयुक्त होने लगा औरं संकीर्ण शब्द होकर रह गया।

रंगमंच के व्यापक एवं गौरवमय अर्थ को स्पष्ट करने के लिए डॉ० लाल ने शेक्सपियर के 'ड्रामा' हेमलेट के पात्र हेमलेट के एक डायलॉग को उद्धृत किया है:-

---

The purpose of playing whose end, both first and now. The mirror upto nature, to show vertue her own future, scorn her image and the very age and body of the time his and pressure.

डॉ० लाल रंगमंच को ही (ड्रामा) नाटक का मूल निकष ाते हैं। इस प्रकार वे अप्रत्यक्ष रूप से नाटक के सही स्वरूप ो पहचानने में सहायता करते हैं।

आपने नाटक रचना प्रक्रिया में आने वाले तत्वों का स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया है। कथावस्तु को वे नाटक का सर्वोपर्य अनिवार्य अंग मानते हैं। कथावस्तु नाटक का मूलाधार है जहाँ से नाटक का समस्त विकास, परिणति और संभावनाएं अपने लिए ठोस भूमि पाती हैं। नाटक की कथावस्तु, इसकी घटनाएं और कार्य-व्यापार स्थितियाँ कैसी हों, इस पर भी आपने अपने विचारों को स्पष्ट किया है:- "ड्रामा की परिकल्पना प्रस्तुतीकरण स्तर से जिस प्रकार बिना अभिनेता और दर्शक के असंभव है, ठीक उसी प्रकार 'ड्रामा' की रचना अपने सृजन के स्तर के बिना जिज्ञासापूर्ण घटना, संवेद्य स्थिति के कलात्मक चयन के कठिन है।"[1] ऐसी घटनाएं, स्थितियाँ, कार्यव्यापार जो अपनी मौलिकता, अनोखेपन, चमत्कारिक घटनाओं से नहीं है जिनमें सार्थकता एवं युगीन संदर्भ न हो। डॉ० लाल ने इसी लिए इसके स्पष्टीकरण के लिए 'ड्रेमेटिक' शब्द का प्रयोग किया है।

रचना शिल्प की दृष्टि से लक्ष्मी नारायण लाल के अनुसार चरित्र विकास चार प्रकार से हो सकता है- चरित्र रचना अपने बाह्य स्वरूप से, शरीर की शारीरिक दशा, वेश-भूषा, उम्र आदि, जिनके आधार से दर्शक या पाठक तत्काल चरित्र से सीधे परिचित हो जाते हैं। भाषा बोली दूसरा पक्ष है, जिसके द्वारा चरित्र का उद्घाटन होता है। चरित्र अपने व्यवहार से, अपने छोटे-छोटे कार्यों से अपने व्यक्तित्व का परिचय देता है। यह चरित्र निर्माण में तीसरा साधन है। चौथे प्रसंग में यह पक्ष आता है कि अमुक चरित्र के बारे में पात्र क्या कहते हैं और उसके लिए वे क्या

1. रक्त कमल एक अध्ययन - डॉ० ज़ौहरा अफज़ल पृ० 136

विचार और प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

भाषा के सम्बन्ध में इनका कथन है कि- "नाट्क की भाषा सीधी और सरल होती है। जो तुरन्त अपने अर्थ के साथ दर्शकों की समझ में आ जाती है। भाषा, कथोपकथन के रूप में नाटक में मूलतः व्यवहृत होती है। फलतः स्पष्टतः और सीधेपन के अतिरिक्त इसका मनोरंजक होना आवश्यक है वरना दर्शक के लिए नाटक रूचिकर ही न हो सकेगा। भाषा को जीवन और चरित्र की आत्मा को पकड़ कर चलना होता है।"[1]

वर्तमान युगीन नाटकारों ने भाषा में जो नवीन प्रयोगों द्वारा अतिरिक्त नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया है, डॉ० लाल ने उन सबका समर्थन भी किया है। भाषा में विराम और टूटते हुए शब्दों का प्रयोग, लम्बे संवादों के अतिरिक्त थोड़े शब्दों के संवादों को भी आपने उल्लेखनीय बताया है।

नाटक के उद्देश्य के सम्बन्ध में भी इन्होंने एक जागरूक चिन्तन की अभिव्यंजना की है। उनके अनुसार उद्देश्यतत्व तो नाटक को एक समर्थ व्यक्तित्व प्रदान करता है। ये नाटक और रंगमंच का एक दूसरे से कार्य एवं कारण का सम्बन्ध मानते हैं। इस प्रकार के मताभिव्यक्ति से रंगमंच के महत्व का सही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। आन्तरिक स्तर पर रंगमंच के स्वरूप का अन्वेषण करते हुए वे इसे एक अनुभूति मानते हैं, जिसकी अपनी असीम व्यापकता एवं गहराई है। आप नाटक की रचना प्रक्रिया की सम्पूर्णता रंगमंच पर ही मानते हैं किन्तु प्रथम स्तर पर नाट्य रचना नाट्य प्रदर्शन और नाट्यानुभूति को वे नाटककार की रचना प्रक्रिया का ही अनिवार्य अंग मानते हैं। डॉ० लाल के अनुसार एक अच्छे नाटककार के भीतर एक अच्छा साहित्यकार,

---

1 रंगमंच और नाटक की भूमिका- डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल पृ० 120

एक अच्छा अभिनेता और एक अच्छा निर्देशक सदैव कार्यरत होता है।

इसके अतिरिक्त डॉ० लाल 'दर्शक' को भी जिसके लिए किसी भी रंगमंच की कल्पना की जाती है और जिसके व्यक्तित्व ने हर युग में नाटक की प्रकृति और प्रदर्शन की पद्धति को प्रभावित किया है, महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। रंगमंच के प्रचार-प्रसार में समस्या केवल नाटककार की नहीं, वरन् दर्शकों की भी है, जिनके लिए बड़ी से बड़ी रंगशाला का निर्माण हो और फिर भी वह सूनी पड़ी रहे। इस समस्या पर डॉ० लाल के विचार कुछ इस प्रकार हैं:- "ये दर्शक न यथार्थवादी नाटक चाहते हैं न अभी प्रयोगात्मक रंगमंच। ये सब नाटक चाहते हैं। कैसा नाटक ? ऐसा जो एक ओर इनके दर्शक को उसके भीतर वाणी दे सके, उन्हीं के मानसचित्र, उन्हीं के राग-रंग में जो उन्हें बाँध सके और उन्हें रंगशाला में बैठने के लिए जो आकर्षित कर सके। क्योंकि व्यावहारिक स्तर पर आज नाटककार से पहले रंगशाला में दर्शक की समस्या है।"[1]

डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। एक साथ वे कहानीकार, उपन्यासकार, निबन्धकार और नाटककार हैं किन्तु उनके नाटकों को अधिक प्रसिद्धि मिली है। इनका नाटककार वाला रूप अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। इसका कारण यह है कि आपके अन्दर नाटककार का एक सम्पूर्ण सक्रिय व्यक्तित्व है, जो इस मानसिक, व्यवहारिक या काल्पनिक स्तर पर ही नहीं, शारीरिक स्तर पर भी नाटक के मैदान में सीधे उतर कर थियेटर के जागरण के प्रयत्न करता है। यह बात छुपी नहीं कि डॉ० लाल निर्देशक, अभिनेता, रंगकर्मी भी हैं और नाटककार और नाट्य समीक्षक भी, उनके इसी व्यक्तित्व के कारण ही आपने

---

1 रक्तकमल- एक अध्ययन- डॉ० ज़ौहरा अफ़ज़ल: पृ० 139

नाटक को उसकी विधागत मौलिकता मे पहचाना और इस पहचान की सबसे माँग भी की। गुण और परिभाषा दोनों ही दृष्टियों से इनका योगदान समकालीन नाट्य-साहित्य में चर्चा का विषय रहा है। डॉ० ल० ना० लाल का जो हिन्दी नाट्य-साहित्य को योगदान है, वह अविस्मरणीय है। नाट्य चिन्तन सम्बन्धी उनकी भूमिका सराहनीय है।

□□□□

रज़िया तहसीन और उनका 'शिकारी-शिकार' जंगल से प्यार'

ज़ाहिदा जबीन

उदयपुर (12 जुलाई 1936) में जन्मी कु० रज़िया तहसीन उन उभरती नवलेखिकाओं में से हैं जिन्होंने सब से हट कर सर्वथा नए विषय को अपने साहित्य का आधार बनाया। प्रकृति, जंगल, पहाड़, जंगली जानवर, जड़ी-बूटी तथा आदिवासी जीवन और उनकी समस्याओं का चित्रण करना इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएं हैं।

कहानी लेखन में इनकी रुचि बचपन से ही थी। किन्तु सन् 1970 के बाद से इनके लेखन में एक निखार आया जिसने उन्हें उच्चकोटि की लेखिकाओं की पंक्ति में ला खड़ा किया।

रज़िया जी के दो कहानी- संग्रह, 'शिकारी- शिकार, जंगल से प्यार' (1991), और 'रोमांचकारी शिकार कथाऐं' (1993) प्रकाशित हुए हैं। इनमें प्रथम कहानी-संग्रह, 'शिकारी- शिकार, जंगल से प्यार' की समस्त कहानियाँ शिकार की सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं। जिनमें से अधिकांश 'धर्मयुग' पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं।

आप वन्य-प्रेमी एंव संरक्षक होने के अतिरिक्त समाज-सेविका भी हैं। महिलाओं, बच्चों, दीन-दुखियों से आपको विशेष सहानुभूति है और सदा उनकी सहायता के लिए अग्रसर रहती हैं। आपके लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। लेखिका स्वयं अपने लेखन-विषय के बारे में कहती हैं--- "सामाजिक और प्राकृतिक माहौल मेरे लेखन के ख़ास मौज़ू (विषय) रहते हैं।"[1]

---

1 रजिया तहसीन— के पत्र से।

'शिकारी-शिकार, जंगल से प्यार' नामक संग्रह के बारे में लेखिका स्वयं लिखती हैं- "इस संग्रह में जो शिकार कथाऐं आप पढ़ेंगे वे सही और सच्ची हैं : स्थान, नाम इत्यादि के यथावत् उपयोग के साथ ये वे घटनाएं हैं जिनके बीच मैं स्वयं गुज़री हूँ अथवा बापू (पिता) के मुख से सुना अक्षरश: वर्णन है।"[1] संग्रह में लेखिका ने अपने पिता द्वारा किए गए शिकार की कथाओं एवं घटनाओं का वर्णन किया है। अत: संग्रह की कहानियों के नायक लेखिका के पिता- तफ़ज्जुल हुसैन साहब स्वयं हैं।

संग्रह की प्रथम कहानी, 'जब तीसरी गोली चली' में लेखिका ने उदयपुर से 33 मील दूर देलावास के शिकार कैम्प में घटने वाली दुर्घटनाओं का उल्लेख किया है। इसमें बघेरों के शिकार से सम्बन्धित रोचक कथाऐं मिलती हैं।

'बघेरों का प्रकोप' में लेखिका ने सन् 1948 की बात का उल्लेख किया है, जब जंगल में पाए जाने वाले बघेरों के प्रकोप से पीड़ित अम्बेरी मोजा के आसपास के गाँवों के कुछ लोग राजस्थान के मंत्री के पास सहायता मांगने के लिए आए थे। बघेरों की संख्या अधिक हो जाने के कारण उनको जंगल में पर्याप्त भोजन नहीं मिलता था। इसलिए वे भोजन के लिए गाँव की ओर आते थे और ग्रामीणों के मवेशियों को उठा ले जाते थे। कुशल शिकारी होने के कारण राजस्थान के मुख्यमंत्री ने यह काम तफ़ज्जुल साहब को सौंपा, जिन्होंने बड़ी कुशलता से सात बघेरों का शिकार किया और गाँव वालों ने संतोष की साँस ली।

'आदिवासी शिकारी और दो बोरी गेहूँ' में रीछों, सुअर, जंगली मुर्गी आदि के शिकारों का वर्णन करते हुए, भारत में

---

1 रजिया तहसीन— 'शिकारी-शिकार, जंगल से प्यार' संग्रह में 'लेखक की ओर से' शीर्षक के अन्तर्गत - पृ0 5.

स्वतन्त्रता पूर्व जागीरदारी प्रथा का उल्लेख भी किया गया है, कि किस प्रकार जागीरदार लोग आदिवासियों से बेगार करवाने के अतिरिक्त उन पर अत्याचार और दुर्व्यवहार करते थे।

'हमद्रयाद' उस काले नाग को कहते हैं जिसे भारत में कुल देवता और कुल की सम्पत्ति का रक्षक माने जाने की परम्परा है। इसी विशालकाय नाग-कुल देवता के दर्शन मिलने पर किसान की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता।

'सुन्दर विलास का भूत' में एक रोचक घटना का विवरण मिलता है। सुन्दर विलास के बाग के महल में भूत-प्रेतों का डेरा होने की ख़बर सुन कर तफ़ज्जुल साहब वहाँ रात को ठहरने का निर्णय लेते हैं। हर रात ढ़ाई बजे छत पर ढ़म-ढ़म की ध्वनि रुक-रुक कर सुनाई देती थी। एक रात छत पर जाने पर पता चला कि एक विशालकाय बन्दर कलाबाज़ी कर रहा है। सुबह बाग में जाने पर यह रहस्य भी खुल गया कि वहाँ आम और इमली के पेड़ों पर बन्दर रहते हैं। इस प्रकार सुन्दर विलास के बाग और महल के भूतों का रहस्य खुल जाता है, जहाँ डर के कारण कोई भी आता-जाता न था।

'गुलबाघ का शिकार' में लेखिका ने अपने पिता द्वारा किए गए बघेरे अर्थात् गुलबाघ के सफल शिकार का चित्रण किया है।

'छलावा' में एक रहस्यमय घटना का वर्णन मिलता है। एक रात शिकार करते हुए तफ़ज्जुल साहब ने तीतरों और चिंकारों के झुंड पर गोली चलाई। सब लोगों ने चिंकारे को गिरते देखा। लेकिन जब उसे उठाने गए तो चिंकारे या उस झुंड का कहीं निशान ही न मिला। वापस घर लौटते समय उन्हें एक औरत का स्वर सुनाई दिया जो किसी लड़की को बुला रही थी। यह भी आश्चर्य की बात थी कि रात को घंने जंगल में एक औरत और

एक लड़की क्या कर रहे थे। तभी एक पुरुष के कराहने और चिल्लाने की आवाजें आई। घने अंधकार और साथी की ज़िद के कारण वे आगे नहीं बढ़ सके और घर लौट आए। लेकिन उनके मस्तिष्क में यह बात गूँजती रही कि शायद वह गोली उसी पुरुष को लगी होगी जो दर्द के कारण कराह रहा था। वे उसी समय इन्सपेक्टर के पास अपने जुर्म का इकबाल करने गए। इन्सपेक्टर ने रिपोर्ट लिखवाने से पहले जंगल की छानबीन करने की सलाह दी। आश्चर्य की बात है कि सुबह जंगल में न कोई लाश मिली और न खून के धब्बे। गाँव में पता करने पर किसी दुर्घटना या किसी व्यक्ति के गुम होने का समाचार नहीं मिला।

'शिकार- दर- शिकार' में भी बरवाड़ा इलाके में खेले-जोने वाले दो घातक और हथियारे बघेरों के शिकार का मार्मिक चित्रण मिलता है।

'न भूलने वाली एक कहानी' में तफ़ज्जुल साहब के एक मित्र का उल्लेख आता है, जो एक ऊँचे सरकारी अधिकारी थे। वह उदयपुर नगर से लगभग दस किलोमीटर दूर 'अमरखजी' के घने जंगलों में गाड़ी के जाने के लिए रास्ता बनवाते हैं। वह जंगल में टेनिस- कोर्ट और विश्राम-कुटि भी बनवाना चाहते थे किंतु उनके स्वर्गवास के साथ ही अन्य योजनाऐं भी खत्म हो जाती हैं।

'राड़ाजी' में इस तथ्य को दिखाया गया है कि शिकार करते समय शिकारी भटक भी सकता है। अत: प्रकृति उससे छल करती है, एक अनजानी आवाज़ जो शिकारी को भटकाती है, उसे आदिवासी लोग 'राड़ाजी' कह कर नमन करते हैं।

'बिच्छू-मगरी और उड़न गिलहरी' इस संग्रह की अन्तिम कहानी है। लेखिका ने बिच्छुओं के स्वभाव और उड़न गिलहरी का रूप-रंग ऐसे प्रस्तुत किया है कि आँखों के सामने चित्र रेंगते हुए

नजर आते हैं।

कु० रज़िया तहसीन का यह कथा-संग्रह अपने आप में एक अनुपम उदाहरण है। वह अन्य लेखिकाओं से हट कर लिखती हैं और इस ढंग से लिखती हैं, कि पाठक उसमें लीन हो जाता है और वह भूल जाता है कि वह कोई पुस्तक पढ़ रहा है, बल्कि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वयं उन जंगलों मे भटक रहा है, शिकार कर रहा है और प्रकृति का आनन्द ले रहा है। उसे लगता है मानो वह उसकी अपनी अनुभूति हो।

अलोच्च संग्रह में कहानियों के नायक (लेखिका के पिता), परिवार जन और अन्य जनों के चित्र भी सम्मिलित किए गए हैं। 'यह ग्रन्थ अकेली शिकार कथा नहीं है बल्कि आजीवन प्रकृति-प्रेमी और अभ्यासी कुटुम्ब परम्परा की मुँह-जबानी कहानी है'।[1]

आपकी भाषा अत्यन्त सरल, स्पष्ट और रोचक है। वातावरण का प्रभाव होने के कारण भाषा में उर्दू शब्दों का बाहुल्य अवश्य है किन्तु इससे उनकी भाषा बोझिल नहीं बनी है। पाठक आसानी से पुस्तक पढ़ कर पुस्तक का आनन्द उठा सकता है। 'लेखन शैली इतनी सरल और प्रवाहित है कि पाठक पढ़ते ही प्रकृति में खो जाता है। मानो आप ही जंगल में शिकार की सैर में सफ़र कर रहा हो और प्रकृति का आनन्द ले रहा हो।[2]

'इस पुस्तक में जंगल की बरबादी और जानवरों की समाप्ति पर जहाँ दर्द और टीस भरी झंकार मिलती है, वहीं आज से 30-40 साल पहले तक मेवाड़ के घने जंगलों और उनमें विचरते जानवरों की सतरंगी झलक भी दिखाई पड़ती है। साथ ही यह

---

1 रजिया तहसीन— 'शिकारी-शिकार जंगल से प्यार' संग्रह के पुरावचन से-पृ0 7.

2 वही — पृ० 7

कुदरत के बेहद दिलकश मंजरों की दास्तान भी कहती है; जो दिलोदिमाग को जकड़ लेती है।[1]

संग्रह का शीर्षक भी सुन्दर और सटीक है। लेखिका ने वन्य और प्रकृति का इतना सुन्दर और सजीव चित्रण किया है कि पाठक प्रकृति का प्रेमी बन जाता है। कोई भी शिकारी यदि प्रकृति की ममता और सौन्दर्य को तन-मन की आँखों से देखे तो इस बात में कोई सन्देह नहीं कि वह शिकार भूल कर प्रकृति से प्रेम करने लगेगा।

लेखिका ने चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। अतः वह शब्दों से मानो चित्र खींचती हैं। पुस्तक पढ़ते समय पाठक की आँखों के सामने प्रकृति के दृश्य सजीव हो उठते हैं।

'शिकारी-शिकार जंगल से प्यार' संग्रह के लिए लेखिका को 'केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय' और 'राजस्थान साहित्य अकादमी' द्वारा पुरस्कृत भी किया गया है। इसका उर्द भाषा में अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है। आपका दूसरा कथा-संग्रह 'रोमांचकारी शिकार कथाएं' मध्यप्रदेश के जंगलों में अंग्रेज शिकारियों द्वारा खेले गए शिकार की अंग्रेजी कहानियों का हिन्दी अनुवाद है।

###

---

1. रजिया तहसीन- 'शिकारी- शिकार जंगल से प्यार' संग्रह के आमुख से।

श्रीमती मन्नू भण्डारी जी की कहानियों में नारी

रूबी जुत्शी

साठोत्तरी महिला कहानीकारों में मन्नू जी का प्रमुख स्थान है। उनकी पहली कहानी 'नया समाज' पत्रिका में सन् 1954 में प्रकाशित हुई, जिसका सम्पादन मोहन सिंह सेगर करते थे, जिस कहानी ने उन्हें कहानीकार के रूप में यश दिलाया है और पाठकों का ध्यान आकर्षित किया वह है 'मैं हार गई' जो सम्भवतः सन् 1956 में 'कहानी' (इलाहाबाद) में छपी थी। तब से उनके लिखने का सिलसिला निरन्तर जम गया है, इस तरह जो दूसरों के लिए दूसरी कहानी है वही उनके लिए अपनी पहली कहानी है।

मन्नू जी के पांच कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन संग्रहों के अतिरिक्त इनके और दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं लेकिन उनमें संकलित कहानियाँ पूर्व प्रकाशित कहानियाँ हैं। 'मैं हार गई सन् 1957, 'तीन निगाहों की एक तस्वीर सन् 1959, 'यही सच है' सन् 1968, 'एक प्लेट सैलाब सन् 1968, त्रिशंकु सन् 1978 आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह है।

आपने अपनी कहानियों में बीसवी सदी की नारी की मानसिक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने सदैव उन समस्याओं को लिया है जो आम जीवन से सम्बन्धित हुआ करती हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में जिस नारी को बार-बार दर्शाने का प्रयत्न किया वह कोई विशेष नारी नहीं है बल्कि एक ऐसी संघर्षमयी नारी है जो समस्याओं को झेलती है, कभी उनके सामने टूटती है और कभी उनको तोड़ती है। जिस नारी को बार-बार

अपनी रचनाओं के द्वारा पहचानना चाहती है, वह आन्तिरिक संस्कारों, भावनाओं और संवेदनाओं के साथ बाहरी स्थितियों और दबावों को झेलती कभी उनको तोड़ती और कभी उनके सामने खुद टूटती हुई नारी है। उदाहरण के तौर पर:- 'ईसा के घर इन्सान' कहानी की नारी अपूर्व सुन्दरी होने के साथ-साथ एक साहसी युवती भी है। अपने ऊपर किसी भी प्रकार का अंकुश सहन न करने के कारण कालेज के कठोर अनुशासन के विरुद्ध विद्रोह करती है क्योंकि उसे जीवन से अत्यन्त प्रेम है। इस बात का जीता-जागता प्रमाण उसका प्रस्तुत कथन है- "मैं अपनी ज़िन्दगी को, अपने इस रूप को चर्च की दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूँगी। मैं ज़िन्दा रहना चाहती हूँ। मैं आदमी की तरह ज़िन्दा रहना चाहती हूँ। मैं इस चर्च में घुट-घुट कर नहीं मरूँगी..... मैं भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊँगी.....।"[1] वह एक ऐसी नारी है जो किसी के अधिकार को सहन नहीं कर पाती । वह एक स्वच्छ जीवन बिताने की इच्छुक है।

'जीती बाज़ी की हार' कहानी की मुरला अन्य लड़कियों से भिन्न है। अन्य लड़कियों की भांति उसे सजने-संवरने की भी चाह नहीं। दुनिया को दिखाना चाहती है कि बिना पुरुष पर आश्रित रहे भी नारी का अपना एक अस्तित्व हो सकता है। इसी कारण वह आजीवन अविवाहित रहने का प्रण करती है। वह़ पुरुष के महत्व को स्वीकारती नहीं है। अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है खासतौर पर वह पुरुष पर आश्रित नहीं रहना चाहती है। इस बात का स्पष्ट प्रमाण मुरला के इस कथन से मिलता है:- "क्या

---

1. मन्नू भण्डारी: मैं हार गई: कहानीसंग्रह: ईसा के घर इन्सान :कहानी, पृष्ठ न०: 17 प्रकाशन वर्ष: सन् 1957 प्रकाशक: अक्षर प्रकाशन नई दिल्ली।

दकियानूसी लोगों जैसी बातें करती है। सहारा उसे चाहिए जो अपने को अबला समझे। मैं सबला हूँ, मुझे किसी का सहारा नहीं चाहिए। बच्चों को तो मैं अपनी उन्नति का बाधक समझती हूँ।"[1]

'एक कमज़ोर लड़की की कहानी' की रूप पिता से बहुत अधिक प्रेम करने के कारण उनकी हर बात को स्वीकारती है। अपने निश्चय पर दृढ़ न रहने की कमज़ोरी रूप के चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता है। उसके विषय में प्रस्तुत कथन ध्यान देने योग्य है:- "विरोध तो बड़े ज़ोर-शोर से करेगी, दुनिया-भर की अकड़ दिखाएगी पर करेगी वही जो दूसरे चाहते हैं।"[2] वह अपने पति को किसी भी प्रकार का धोखा नहीं देना चाहती है। यद्धपि उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध होता है। वह दिन भर घर में अकेली पड़ी रहती है पति के पास इतना समय नहीं है कि वह अपनी पत्नी की इच्छा-अनिच्छा का ध्यान रख सके। रूप जानती है कि वह अपने पति के साथ कभी खुश नहीं रह सकेगी। फिर भी वह अपने पति को परमेश्वर मानकर उसके साथ रहने को अपना सौभाग्य मानती है:- "जानते हो मेरी मांग में किसी और के सुहाग का सिन्दूर है- अग्नि को साक्षी मानकर मैं उनकी हो चुकी हूँ।"[3]

रंजना 'अभिनेता' कहानी की एकान्तप्रिय लड़की है। वह भीड़-भाड़ से घबराती है। बहुत कम लोगों से उसकी मित्रता है। उसके मन में एक प्रेमी की चाह है लेकिन एक ऐसे प्रेमी की जो सम्पूर्ण रूप से उसका हो। वह पुरुषों से कुछ अधिक ही घबराती है। वह अत्यन्त सतर्क रहती है, वह नहीं चाहती कि लोग उसको

---

1. मन्नू भण्डारी. मैं हार गई: पृष्ट न०: 39, प्रकाशन वर्ष सन् 1957 प्रकाशक : अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. वही, पृ० 47

3. वही, पृ० 61

लेकर कोई स्कैंडिल खड़ा करें। किन्तु न चाहते हुए भी वह एक पुरुष के प्रेमजाल में फँस जाती है और वही पुरुष उसे छलता है क्योंकि वह नहीं जानती कि वह पहले से ही विवाहित है और उस जैसी कई मासूम युवतियों को अपने प्रेमपाश में बाँध रखा है- "मैं तो केवल रंगमंच पर ही अभिनय करती हूँ पर तुम्हारा तो सारा जीवन ही अभिनय है। बड़े ऊँचे कलाकार और सधे हुए अभिनेता हो तुम मेरे दोस्त।"[1] पुरुष जाति से उनका विश्वास उठ जाता है। "कील और कसक" की रानी ने अपनी विवाहित जीवन के सुनहरे सपने देखे थे, किन्तु विवाह के पश्चात् ये सारे सपने बिखर जाते हैं। पति की लापरवाही और कुरूप होने के कारण रानी की इच्छाओं पर पानी फिर जाता है। वह चाहती है कि उसका पति उसके रूप की प्रशंसा करे किन्तु पति को काम से इतना अवकाश नहीं मिलता। प्रेम पाने की चाह में वह एक अन्य पुरुष की ओर आकर्षित होती है। रानी प्रेम की भूखी है यही प्रेम की भूख उसको शेखर की ओर आकर्षित करती है। किन्तु वह मर्यादा की सीमा कभी नहीं लांघती है। वह शेखर के प्रेम को अन्दर ही अन्दर दबाती है। कभी भी पति के सामने अपने प्रेम की कसक को प्रकट नहीं करती है। पति की जड़ता को देखकर भी मुँह नहीं खोलती है। इस बात का प्रमाण इस कथन से मिलता है:- "रानी के अस्तित्व को भूलकर सो गया । रानी को लगा, वह अपने पास सोये इस आदमी का मुँह नोंच ले, अपने बाल नोच ले, फूट-फूटकर रो पड़े और आँसुओं से सारे घर को, और नीचे ही निरन्तर धड़धड़ करने वाले इस प्रेम को डुबो दे। पर ऐसा भी नहीं हुआ और खामोशी से आँसू बहाते और सर्द आहें भरते-भरते रानी सो गई।"[2] 'अकेली' कहानी की सोमाबुआ जीवन की अनेक

---

1. मन्नू भण्डारी: मैं हार गई: कहानी संग्रह: अभिनेता कहानी पृ॰ न0: 84 प्रकाशन वर्ष: सन् 1957 प्रकाशक: 'अक्षर' प्रकाशन नई दिल्ली।
2. वही, पृ॰ 118

समस्याओं को झेलने के बावजूद भी सामाजिक मानमर्यादा को बनाऐ रखती है। स्वाभिमानी नारी होने के कारण आर्थिक संकटों से घिरी होने पर भी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाती है। विवश होकर गहने के नाम पर जो एक अंगूठी बची थी, वह बेच देती है क्योंकि विवाह पर खाली हाथ जाना अपना अपमान समझती है। इस नारी की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि दूसरों के दुःख में वह सबसे आगे होती है, इस बात का प्रमाण इस कथन से मिलता है:- "शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जाती और फिर छाती फाड़कर काम करती, मानो वे दूसरे के घर में नहीं अपने ही घर में काम कर रही है।"[1] उनको हम रूढिवादी कह सकते हैं क्योंकि जो रूढ़ियाँ प्राचीन काल से चली आ रही है, आर्थिक संकटों में भी वह उनका पालन करती है। उनको लगता है कि यदि वह ऐसा नहीं करेंगी तो समाज में उसका नाम कट जायेगा।

प्रतिमा एक ऐसे पुरुष की पत्नी है जो साल में केवल एक बार घर आते थे। प्रतिमा के जीवन का कोई क्षण ऐसा नहीं रहा जिसको वह याद कर सके। वह एक भारतीय नारी होने के नाते उन परम्पराओं का बस पालन कर रही है जो चिरकाल से चली आ रही हैं। वह किसी की पत्नी है, इस मर्यादा का उसे निर्वाह करना है। पति के प्रति उसके मन में कोई चाह, कोई इच्छा नहीं, वह इस वातावरण में घुटन अनुभव करती है, किन्तु उससे भाग नहीं सकती। प्रतिमा एक ऐसी नारी है जो अपने ऊपर सारे कष्ट सहन कर लेती है किन्तु किसी दूसरे के दुख को देखकर द्रवित हो उठती है। बड़ा कोमल हृदय है उसका। इसी कारण वह मोना को रोती देखकर दुःखी होती है। उसको अपना दुःख मोना के दुःख से कहीं कम लगता है।

---

1. डॉ० बंसीधर एवं डॉ० राजेन्द्र मिश्र: कथालेखिका मन्नू भण्डारी: पृ० न०: 17 प्रकाशन वर्ष: सन् 1991 प्रकाशक: कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली।

मन्नू जी ने समाज के किसी भी खास वर्ग या विशेष नारी को महत्व नहीं दिया है बल्कि आम नारी को पात्र बना कर उनके इर्द-गिर्द की समस्याओं को प्रस्तुत करती है। कहीं उनके पात्र मध्यवर्गीय, कहीं निम्न मध्यवर्गीय और कहीं अभिजात्य वर्ग के होते हैं। 'नकली हीरे' कहानी में दो बहनें दो वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है। इन्दु उन्मुक्त स्वभाव की नारी है, उसकी मान्यता यही है कि विवाह उसी से करना चाहिए, जिसके साथ मन मिल जाये, क्योंकि यह सम्पूर्ण जीवन का प्रश्न होता है। उसे अपने पति का भरपूर प्रेम प्राप्त है। वह साधारण नारी से भिन्न है। नारी समाज की साधारण दुर्बलताओं आभूषण, कपड़े, गाड़ी इत्यादि में उसे कोई आकर्षण नहीं है। इसके विपरीत सरन् को एक साधारण नारी की भांति आभूषण, गाड़ी इत्यादि की दुर्बलता है। इसी कारण वह एक अभिजात्यवर्ग के पुरुष से विवाह तो कर लेती है किन्तु जो आत्मिक सुख उसे मिलना चाहिए वह नहीं मिलता। वह पति प्रेम के लिए तरसती रहती है। तब ही आभास होता है कि धन से बढ़कर प्रेम है। प्रेम के आगे सब कुछ तुच्छ है। सरन् सच्ची हिन्दू नारी का प्रतीक है। वह अनेक मानसिक दुःख झेलकर भी अपने पति को सुखी देखना चाहती है। वह अपनी मान-मर्यादा के कारण बहन से झूठ बोलती है कि उसका पति उसे बहुत प्रेम करता है। 'नशा' कहानी की आनन्दी एक मध्यवर्गीय साधारण नारी है। मज़दूरी करके अपने पति और बच्चों का पेट पालती है। पतिपरायण होने के कारण अपने शराबी पति को शराब के लिए भी पैसे देने पर विवश होती है। पति के अत्याचारों को चुपचाप सहती है। पति से मार खाने पर भी वह उसके विरुद्ध एक शब्द भी सुनने को तैयार नहीं है। वह ऐसे समाज की नारी है जहां पत्नी के लिए उसका पति ही परमेश्वर होता है।

अतः स्वतंत्रता के बाद जिन कहानीकारों ने कहानी को नई

दिशा प्रदान की, उनमें मन्नू भण्डारी जी का नाम निश्चय ही प्रथम पंक्ति में आता है। उन्होंनें किसी विचारधारा से प्रभावित होकर नहीं लिखा अपितु जीवन की मूल वास्तविकताओं पर आधारित साहित्य लिखा। आपकी कहानियां आधुनिक कहानी है। इन्होंने कथावस्तु पर बल न देकर पात्रों के चरित्रों के उद्घाटन पर अधिक बल दिया है। आपने विषम परिस्थितियों से जुझती नारी और उसके अन्तर्द्वद्व से पर्दा हटाकर सामने लाने का सशक्त प्रयत्न किया है। इन्होंने एकदम यथार्थ के धरातल पर नारी को नारी की दृष्टि से देखकर प्रस्तुत किया है। आपने नारी के जीवन में भ्रमपूर्ण स्थितियों को तथा सैक्स के नाम पर किये जाने वाले शोषण को दिखाते हुए उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को खोज निकालने का प्रयत्न किया है। आपकी अधिकांश कहानियाँ नारी-प्रधान हैं। आपने नारी मन की नवीन भावनाओं को प्रस्तुत किया है। जैसे एक नारी दो व्यक्तियों से भी प्रेम कर सकती है लेकिन एक की भाग्या बनकर वह दूसरे व्यक्ति की नज़रों में घृणा की पात्री बन जाती है। मन्नू जी न ही सम्पूर्ण पत्नी है, न ही लेखिका, न ही परिश्रमी गृहिणी और न ही त्यागमयी मां बल्कि इन सबका मिला-जुला एक मिश्रण है, इस बात को उन्होंने स्वंय भी स्वीकारा है:- "न तो मैं पूरी तरह समर्पित पत्नी बन सकती हूँ और न परश्रिमी गृहिणी, न त्यागमयी माँ, न निष्ठावान लेखिका, इन सबका मिलाजुला रूप हूँ"[1]

⫽⫽⫽

---

1. मन्नू भण्डारी: त्रिशुंक: कहानीसंग्रह: मन्नू जी के तमाम रंग. प्रष्ठ न0.15 प्रकाशन: सन् 1978 प्रकाशक: अक्षर प्रकाशन. नई दिल्ली।

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में लोककला और संस्कृति

-मज़हर अहमद ख़ान

कथाकार अपनी रचनाओं में वर्णित घटनाओं, पात्रों, उनके क्रिया-कलापों को स्वाभाविक, जीवन्त और यथार्थपरक बनाने के उद्देश्य से लोककला और संस्कृति के विविध पहलुओं का चित्रांकन करता है। उपन्यासों में वर्णय व्यक्ति या समाज के आचार-विचार रीति-नीति, रहन-सहन, भाषा और आस-पास की परिस्थितियों का वर्णन जितना पट व सहज होगा वह पाठकों को उतना ही अधिक मुग्ध करता है। कथाकार द्वारा सृजित काल्पनिक परिवेश भी सत्य का आभास देता है और प्रभावित करता है। शिवनारायण श्री वास्तव के अनुसार -"किसी स्थिति विशेष का सफल अंकन न हो सकने के कारण कभी-कभी भावों की पूर्ण व्यंजना नहीं हो पाती और कोई अभाव - सा खटकता रहता है। सूक्ष्म निरीक्षण के छोटे-छोटे चमत्कार द्वारा ही इतनी शीघ्रता और पूर्णता के साथ वास्तविक जीवन का भ्रम उत्पन्न कराया जा सकता है। वातावरण के सफल तथा मनोरम चित्रण का कहानी के लिए मूल्य होता है। कभी-कभी सामान्य सड़कों, गलियों तथा बरसात में टपकने वाले घरों के साधारण वर्णन से भी कहानी में विलक्षण मोहकता आ जाती है।"[1] इससे स्पष्ट हो जाता है किं उपन्यासों के लिए लोककला और संस्कृति के विविध रंगों के अंकन का अत्यधिक महत्व है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना उसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती है। समाज के द्वारा ही हम उसे पहचान पाते हैं। अतः उसको समझने के लिए उसके

---

1. हिन्दी उपन्यास-शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० 453 प्रकाशक नंद किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, (संवत् 2016)

आन्तरिक और बाह्य समाज को समझना भी अनिवार्य हो जाता है।[1]

"अलग-अलग वैतरणी" में शिवप्रसाद सिंह ने करैता गाँव की लोककला और संस्कृति का अतिसूक्ष्म विश्लेषण किया है। इसकी व्यंजना में पर्वों, उत्सवों, लोकगीतों, लोकविश्वासों, वार्ताओं और भाषा जैसे लोक अपादानों का पर्याप्त आश्रम लिया गया है। जोकि वहां के सामूहिक जीवन और लोकगंध को ठोस और मूर्त्त आधार प्रदान करने में अत्यन्त सफल सिद्ध हुए हैं। रामनवमी का मेला, हल पर्वरी और मकरसंक्रान्ति जैसे पर्व करैता के लोक-जीवन की आस्थाओं, उमंगों और विश्वासों के अतिरिक्त घटने जीवन मूल्यों की ओर संकेत करते हैं। मेले के अवसर पर दयाल महाराज, भोलू साह और पुजारी शीतला प्रसाद द्वारा की गई टिप्पणियाँ इन पर प्रकाश डालती हैं। करैता के गाँव में असकामिनी देवी की इस बात के लिए बड़ी महिमा है कि वह निपूतियों की कोख भर देती है। रामनवमी के अवसर पर हज़ारों नट-नारी इसी कामना से उसके दर्शनार्थ आती हैं।असंख्य महिलाएँ उसे पूजती हैं, उस पर "पियरी" तथा "परसाद" चढ़ाकर सन्तोष पाती हैं। हल-पर्वरी का त्योहार अकाल का सूचक है। इस अवसर पर औरतों को हल में जोतकर वर्षा की कामना की जाती है। इसी प्रकार मकर संक्रान्ति का पर्व गंगा-स्नान के महत्व को मुखरित करता है। इस अवसर पर ज़मींदारों की ओर से अपनी "परजापौनी" को चिवड़ा और मिठाइयाँ बांटने तथा प्रजा द्वारा ज़मींदारों को नज़राना भेंट करने

1- Man is not alone but exists its society, in a social environment and so far we novelists are concerned, this environment is constantly modifying events. That is just where our real task lies-in studying the interaction of society on the individual and of the external or internal.
Novelists on Noval-Mirian Allot P.303
-Publisher: Routhedge & Kegan Paul Ltd., London. (1956)

की प्रथा है। कल्पू तथा पुष्पा से सम्बन्धित विवाह प्रसंगों की चर्चा में तिलक द्वारा पूजा गुरहथी जैसी गाँव-जवार की कतिपय प्रथाओं एवं परम्पराओं पर प्रकाश डाला गया है। लोकगीतों की कड़ियों और रामायण की चौपाइयों के द्वारा लेखक ने लोकरंग बिखेरने की पर्याप्त कोशिश की है जो कि स्थानीय- जीवन से सम्पृक्त और एकरसता उत्पन्न करते हैं। लछिया-जयसिंह और राजकुमार-राजकुमारी की लोकवार्ताओं को कथाकार ने सार्थकता प्रदान की है। उनमें ग्रामीण जीवन की गहरी पकड़ है। करैता के मेलों का वर्णन, लड़ाई-झगड़ों की प्रस्तुति, चुनावी दाँव-पेंच, अलाव जला कर लोगों का बैठना, धार्मिक क्रिया-कर्म आदि लोक-जीवन के आन्तरिक स्वरूप को रेखांकित करते हैं। करैता गाँव के आँचलिक रंग में पगे पात्र स्थानीय-लोकभाषा का प्रयोग करते समय अपनी अनेक प्रकृत्तियों और भंगिमाओं का परिचय देते हैं।

करैता गाँव के माध्यम के कथाकार ने समूचे ग्रामीण जीवन की व्यथा-कथा को अभिव्यक्त किया है। करैता गाँव के दक्षिण में चमरौटी पट्टी स्थित है। जहाँ हरिजनों का जीवन विसंगतियों और विकृतियों का शिकार होकर रह गया है। करैता टूटे हुए आदर्शों और बीमार मूल्यों वाला एक ऐसा गाँव है जहाँ भारतीय प्रजातंत्र बुरी तहर कराह रहा है। हरिजनों की बटोर और झिनकू के विद्रोह के माध्यम से कथाकार ने निम्नवर्ग के जागरण की ओर संकेत किया है। यह लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो उठे हैं और संगठित होकर अन्याय का प्रतिकार करने लगे हैं।

इसी प्रकार "औरत" उपन्यास में पूर्वांचल की संस्कृति और लोककला के विविध दृश्यों को अंकित किया गया है। यहाँ की भोजपुरी भाषा उपन्यास में एक नई जान फूंकती है। चूँकि इस उपन्यास की रचना ग्रामीण परिवेश को केन्द्रीत करके की गई

इसलिए यहाँ ग्रामीण संस्कृति को ही प्राथमिकता प्राप्त है। पनघट पर ठिठोली करती ग्रामीण स्त्रियाँ, पति के परदेश जाने पर एक दूसरे को छेड़तीं और लोकगीतों के माध्यम से अपनी विरह-वेदना को अभिव्यक्त करती नज़र आती हैं। गरीबी से जूझता भूमिहीन दलित वर्ग, लहलहाते चने के खेत में अध-पक्के चने भून कर खाते शहरी और ग्रामीण व्यक्ति, होली के अवसर पर गाँव की गलियों में हुदडंग मचाते बाल-वृद्ध आदि भारतीय संस्कृति के पोषक तत्व हैं। इन सभी का उल्लेख कथाकार ने जीवन्त रूप में किया है। भोजपुरी संस्कृति के अनुसार यहाँ के घरों की पाकशाला को पीली मिट्टी से पोत कर साफ़-स्वच्छ किया जाता है और "ठहर" (खाना खाने का स्थान) पर बैठ कर भोजन ग्रहण करते हैं।

नटों की लोककला और संस्कृति के नानाविध रूप "शैलूष" उपन्यास में दृष्टव्य हैं। सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करते रहने के कारणवंश इनकी कला में नवीनता देखने को मिलती है। यह प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय के प्रति आस्था और विश्वास रखते हैं। उन्हें कोई धर्म बांध कर नहीं रख पाया है। यह हिन्दू और मुसलमान में भेद करना बनाफर खून की तौहीन मानते हैं। लल्लू नट अवधी और उर्दू भाषा का ज्ञानी है। उसका भाई जुम्मन तो फ़ारसी भी जानता है। इस्लाम धर्मानुसार लल्लू अपने पिता रज्जब की कब्र पर फातिहा पढ़ता है। "रामायण" के गुटके के हाशिये पर उसने उर्दू भाषा में शब्दार्थ लिख रखे थे ताकि उसके अर्थों को भली-भाँति जान सकें। गाना बजाना उनका शौक हैं। रात्रि के समय अलाव जलाकर उसके चतुर्दिक नाचना उन्हें सुहाता है। उनके कारवाँ के साथ भैंस बकरी, मुर्गियाँ आदि रहती हैं। उन्हें भड़कीले कपड़े पहनना अधिक भाता है। नट स्त्रियां छुरेबाजी में दक्ष हैं। वह अपनी आजीविका स्वयं अर्जित करती हैं। वह सिलाई-बुनाई के अतिरिक्त वास्तुकला में भी सिद्धहस्त हैं। "शैलूष"

उपन्यास में वर्णित नट-संस्कृति और लोककला समानता लिए हुए है। रहमीन नट ज़हरीले साँपों को पकड़ने, उन्हें वश में करने की कला में निपुण है। उनके पास दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ, तेंदुआ, साँप आदि की खालें भी पाई जाती हैं, जिन्हें बेचकर यह अपना जीवन-यापन करते हैं।

उनके रीति-रिवाज बिल्कुल भिन्न हैं। शादी-ब्याह के अवसर पर यह लोग भोज का आयोजन नहीं करते हैं। वर-पक्ष की ओर से कन्या- पक्ष के कबीले के प्रत्येक परिवार को खाद्य सामग्री आबंटित की जाती है, जिसे वह स्वयं पकाते हैं। कन्या पक्ष की ओर से मेहर निर्धारित की जाती है। निर्धारित राशि कन्या के पिता को दी जाती है। विशिष्ट अतिथियों का आदर- सत्कार यह हिन्दू परम्परा के अनुसार दही, हल्दी और चावल का तिलक लगाने के उपरान्त आरती उतार कर करते हैं।

"गली आगे मुड़ती है" में भोजपुरी, बंगला और गुजराती संस्कृति तथा लोकरंग को मुख्य रूप से उकेरा गया है। बंगला और गुजराती संस्कृति के चित्रांकन में कथाकार ने उनके धार्मिक पक्ष को आधार बनाया है। दुर्गापूजा बंगला संस्कृति का और मातृपूजा गुजराती संस्कृति का प्राण है। दुर्गापूजा के अवसर पर जो भाव, ज्योति और नृत्य की त्रिवेणी काशी में प्रवाहित होती है उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है। कलकत्ता के कारीगरों द्वारा बनाई गई दशभुजा दुर्गा-प्रतिमाएँ, महिषासुर-मर्दिनी की नाना भंगिमाएं, महिषासुर के शरीर पर लगा देवी का त्रिशूल, महिष के घायल अंग से गिरते रक्त का दृश्य आदि प्रतिमाएँ तथा "ढाकियों के विराट ढाकों में मयूर-पूच्छ खुँसे.... एक लम्बा पुच्छ अपने फेंटे में पीछे खोंस... अजब ढंग से घूम-घूम कर मयूरों की तरह ही सिर मटकाते ढोल बजाने में मगन थे। ... सूखे नारियल के ऊपर के

रेशों की आग आगरू और गुग्गुल के चूर्ण को फेंकते ही ढेर-सा धुँआ उगलने लगती।"[1] इस प्रकार उल्लसित भाव से नाचते-थिरकते, भक्ति के रग में रंगी शक्ति की आराधना और माँ दुर्गा की विविध झांकियों को देखने आई बंगाली स्त्रियों की वेशभूषा भी आकर्षित करती है। जार्जेट, बनारसी सिल्क और तांत की चौड़े किनारे वाली साड़ियाँ पहने तथा आँचल में चाबियों का गुच्छा लटकाये महिलाएँ आदि का वर्णन बंगला संस्कृति एवं लोकरंग को और अधिक यथार्थता प्रदान करते हैं।

गुजराती संस्कृति में माँ को अत्यधिक सम्मानीय स्थान प्राप्त है। घर के सदस्य दीप जला कर उसकी आराधना उसी प्रकार करते हैं जैसे अपने इष्ट देव की करते हैं। माँ की वंदना में गीत गाये जाते हैं। पूजा के पश्चात् गरबा नृत्य किया जाता है। गरबी के भीतर जलता दीप प्रज्जवलित कर उसे सिर पर रखकर माँ की वंदना करती हुई लड़कियों द्वारा नृत्य करना गुजराती लोक-संस्कृति का परिचायक है। गुजराती नागर जाति सुसंस्कृत ब्राह्मण वशं के कहलाते हैं। हाट देव को यह अपने इष्टदेव के रूप में पूजते हैं। यहां बंगला समाज का प्रतिनिधित्व सुबोध भट्टाचार्य और उसकी बहन जयंती तथा गुजराती संस्कृति की प्रस्तुति किरण के परिवार द्वारा हुई है। भोजपुरी संस्कृति का चित्रण मुख्य रूप से रामानद के माध्यम से हुआ है। उसका निवास स्थान एक मठ है। उपन्यास की कथानुसार वह प्रारम्भ में बनारस के एक साधु से मिलता है, उसकी आसक्ति चंड भैरव की एक कोठरी है। जयंती और किरण से उसका सम्पर्क सांस्कृतिक संदर्भ में हुआ है और उसके प्रेरणा-स्रोतों में शुनः शेष की ऋचा, गंगा, महाश्मशान और सिद्ध ब्राह्मण वंशाभिमान आदि तत्वों का प्राधान्य है। लोक-जीवन को

1- गली आगे मुड़ती है- शिवप्रसाद सिंह, पृ० ४१

चित्रित करने में रज्जो, जमानादास, झूरी, रजुल्ली और सिचन्ना सहायक सिद्ध हुए हैं।

"नीला चाँद" में मध्यकालीन और "वैश्वानर" में उपनिषद्कालिक काशी की संस्कृति और स्थानीय रंगों का व्यापक चित्रण है। किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास के लिए तत्कालीन परिवेश का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना आवश्यक है। "नीला चाँद" में कथाकार ने विभिन्न ऐतिहासिक ग्रन्थों का सहारा लेकर तत्कालिक मूल चित्रों में प्राण-प्रतिष्ठा की है। काशी पंडों की भूमि है। स्थान-स्थान पर हवन कंडों के सम्मुख त्रिशुल गड़ाए बैठे साधुओं को देखा जा सकता है। शिवप्रसाद सिंह ने अनुसार मध्यकालीन काशी के ब्राह्मण यज्ञ-पूजा कराने में असमर्थ थे। स्त्रियाँ आभूषण पहन्न कर घर से बाहर नहीं निकल सकती थीं। नन्दन पाण्डे जैसे ब्राह्मण मांस-मदिरा का सेवन करते थे। गंगा के तट पर बैठने वाले कुछ पंडित-पुरोहित ऐसे भी थे जो लूट-पाट, छीना-झपटी और भोग-विलास में लिप्त रहते थे। ऐसे पुरोहितों को 'बनारसी गुण्डा' कहा गया है।

काशी के मंदिरों की कला-कौशल का वर्णन कृतिकार ने बहुरंगीय शैली में किया है। काशी का प्रसिद्ध महालय कणमेरु द्राविड कला का जीता-जागता उदाहरण है। यह पचास हाथ ऊँचा बहुमंज़िला मंदिर एक विशाल क्षेत्र को घेरे हुए है। इसके चारों कोनों पर चार विशाल मंदिर बनाए गए हैं, जो इसे और अधिक भव्यता प्रदान करते हैं। नन्दीश्वर मंदिर नागर शैली में बना अद्भुत और उन्मुक्त वास्तु शिल्प का नमूना है। प्रत्येक मंदिर के ऊपर गेरू वर्ण की पताका हवा के हल्के स्पर्श मात्र से आन्दोलित हो उठती है। गंगा नदी के धनुषाकार तट, काशी के मंदिरों, धवल गृहों और नैगमिक श्रेष्ठियों की उच्च अट्टालिकाओं

का धूम्र लोहित छवि सभी यात्रियों को हैरत में डाल देती है। यहाँ के सोनाली रंग में डूबे ध्वल गृह देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो काशी कोई स्वप्न-नगरी हो। गमछा लपेटे काशी की संस्कृति की घोषण करते केवट, यात्रियों को गंगा पार कराने के लिए चिरौटी करते दिखलाई पड़ते हैं। काशी में प्रवाहित गंगा, काशी की संस्कृति का प्राणाधार है। इसके बिना तो काशी की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यहां गंगा के विभिन्न रूपों को चित्रित किया गया है। कहीं वह अपने वलय में शिव को समेटे हुए कल-कल स्वरों में खिलखिला रही है, तो कहीं के सरिया साडी में लिपटी शिव से मिलने के लिए आकुल हैं। इस प्रकार यहाँ की ध र्म-साधना, कला, वेशभूषा मानवीय रंग, आचार-विचार आदि का समसामयिक विवेचन किया गया है।

"वैश्वानर" उपन्यास में कथाकार ने काशी की प्राचीन संस्कृति और लोककला का सूत्रपात करते हुए स्पष्ट किया है कि काशी एक निरजन भूमि थी। सर्वप्रथम ईशान नाम व्यक्ति यहाँ उपस्थित हुआ। जहाँ उसने एक विशाल ज्योतिलिंग के दर्शन किये, जिसका कोई अन्त नज़र नहीं आ रहा था। ब्रह्मा और विष्णु भी उसके ओर-छोर का पता लगाने में असफल रहे थे। ऐसा विश्वास है कि वह पवित्र ज्योति-स्तम्भ आज भी वहाँ विद्यमान है जिसे कोई देख नहीं पाता है। उपनिषद्काल में ही वहाँ मदालसेश्वर, भृंगीशेश्वर, जमदग्नीश्वर आदि मंदिरों की स्थापना की गई थी। यहाँ शिवप्रसाद सिंह ने आर्य-अनार्यों का परस्पर सम्बन्ध मनु और इला की वंश परम्परा से जोड़ कर वैदिक कालीन संस्कृति और लोककला की पर्याप्तचर्चा की है।

सामाजिक स्तर पर आर्य जाति में युवक-युवती के विवाह के लिए कोई पूर्व निर्धारित विधान नहीं है। वह अपने जीवन-साथी

को चुनने के लिए स्वतंत्र है। किन्तु ऐसा भी नहीं है कि आर्य जाति व्रात्य कन्या या वर्ण संकर युवक का पाणिग्रहण करें। अगिरा क्षेत्र में ऋषि के वीर्य से मुंडा जाति की नारी से उत्पन्न घोर आंगिरस भी आर्य कहलाता है। विष्णु कलांश धन्वन्तरि अपनी बेटी सिंधुजा का विवाह उससे सम्पन्न कराने में संकोच नहीं करता है। उपनिषद्कालीन काशी के वातावरण हेतु ऋग्वेद, अथर्वेद और उपनिषदों के विस्तृत उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया गये हैं। वहाँ के लोक-जीवन को मुखरित करने के लिए काशीजनों के खान-पान, धार्मिक मान्याताओं, आदर-सत्कार की विशिष्ट परम्पराओं पर भी प्रकाश डाला गया है। आर्य जाति के ऋषिगण अल्पाहार करते हैं। वह भुने हुए जौं के दाने, जिसे "घाना" कहते हैं तथा दूध का सेवन करते थे। आर्यजन बाजरे की रोटी, चौलाई और बेसन की पकौड़ियों से बनी कढ़ी और खोय से बनी मिठाई का सेवन करते थे। अपनी तृष्णा मिटाने के लिए कांजी में काला ज़ीरा और नमक मिलाकर पीते थे। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार रणभूमि में जाते समय यौद्धाओं की दधि, हरिद्रा, दूर्वा और अक्षत तथा दीपक से उनकी आरती की जाती थी। विजयी हो लौटने पर बेला, यूथिका, शेफाली, जावाकुसुम आदि के पूष्पों से स्वागत किया जाता था। यद्यपि उन दिनों नर या पशु बलि के बिना यज्ञ अपूर्ण माने जाते थे तथापि बलि रहित यज्ञों का आयोजन करने का आह्वान किया जाने लगा था। प्राकृतिक आपदाओं से मुक्ति प्राप्त करने के लिए मुंडा और किरात जाति के आदिवासी अपनी झोपड़ियों के द्वार पर नींबू, लाल मिर्च और कुम्हड़ा बेल के पत्तों को अपने घर के द्वार पर लटका देते थे तथा ताम्रचूढ़ पक्षी की गर्दन काट कर उस पर दीपक जलाया जाता था। ये टोने-टोटके उनके अंधविश्वास का द्योतक हैं।